कृषि विज्ञान

दूसरा भाग

लेखक

पण्डित शीतलाप्रसाद तिवारी

प्रकाशक ;

ाहब रामदयाल अगरवाला, प्रयाग

कृषि विज्ञान

दूसरा भाग

लेखक

पण्डित शीतलाप्रसाद तिवारी 'विशारद'

लेक्चरर, कृषि-विभाग, पूर्वीय सरकिल, संयुक्त-प्रान्त

तथा प्रोप्राइटर, चन्द्रवटा डिमॉस्ट्रेशन फार्म, दादूपूर

प्रतापगढ़ (अवध)

प्रकाशक

रायसाहब रामदयाल अगरवाला

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १०००]   १९४१   [मूल्य ॥=)

भूमिका

कृषि-विज्ञान प्रथम-भाग के प्रकाशित होते ही प्रान्तीय शिक्षा-विभाग ने उसे हाई-स्कूल की कृषि-परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक स्वीकार करके उसकी उपयोगिता को उपयुक्त स्थान दिया। इसके अतिरिक्त वह पुस्तकालयों में संग्रहीत होने योग्य भी समझी गई, और पारितोषिक-वितरण में भी उसका यथा योग्य प्रचार होने लगा।

देश की सर्व माननीय संस्था हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने कृषि-विज्ञान के दोनों भागों को उत्तमा-परीक्षा और कृषि-विशारद की परीक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक चुनकर उसकी उपयोगिता को शिक्षित-समाज के सम्मुख उचित सम्मान दिया।

इतना ही नहीं कृषक-जनता में भी उसका पूर्ण प्रचार हुआ और दूसरे भाग की माँग दिनोदिन बढ़ती गई। जनता की अभिरुचि के अनुसार 'कृषि-विज्ञान' का यह दूसरा भाग भी सेवा में उपस्थित है।

चन्द्रवटा डिमॉस्ट्रेशन, फार्म
दादूपूर, प्रतापगढ़ (अवध)
होली, सं० १९९७ वि०

शीतलाप्रसाद तिवारी

विषय-सूची

कृषि विज्ञान

दूसरा भाग

बुवाई

खेतों की जुताई करने तथा खाद डालने के पश्चात बुवाई का काम आरम्भ होता है। खेतों की बुवाई करने के लिए सब से पहिले बीज की आवश्यकता होती है। बीज की ही उत्तमता निरोगिता तथा शुद्धता पर फ़सलों की उपज निर्भर है। यदि बीज स्वस्थ शुद्ध और निरोग न होगा तो पैदावार कभी भी उत्तम प्राप्त नहीं हो सकती। खेतों की अच्छी जुताई तथा खाद का प्रयोग अच्छे बीजों की बुवाई से ही अच्छी पैदावार दे सकती हैं। इसलिये खेतों की बुवाई के समय सबसे पहिले स्वस्थ, निरोग, शुद्ध बीजों का प्रबन्ध करना आवश्यक है।

खेतों में बोने के लिए फ़सलों के बीज कई प्रकार के होते हैं। कुछ फ़सलों के तो दाने ही बीज का काम देते हैं। जैसे गेहूँ, जव चना, मटर, सरसों इत्यादि के दाने ही खेतों में बोए जाने पर उगते हैं और फ़सल के रूप में पैदावार देते हैं। किन्तु कुछ पौदों के बीज उनके फलों में रहते हैं; जैसे भाँटा, मिर्च, टमाटर इत्यादि पौदों के बीज इनके फलों में रहते हैं। जब इन पौदों के फल पक जायँ और धूप में अपने आप सूख जायं तो इनसे

बीज प्राप्त करके बुवाई करनी चाहिए। ऐसी फ़सलों के बीज पहिले क्यारियों में बोए जाते हैं। जब इनके बीज उगकर कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उन्हें खेतों में उखाड़-उखाड़ कर लगाया जाता है। जो पौदे क्यारियों से उखाड़-उखाड़ कर लगाए जाते हैं, वही आगे चलकर फ़सल के रूप में फल देते हैं।

कुछ पौदे ऐसे हैं, जिनका न तो बीज खेत में बोया जाता है; न क्यारियों में बीज बोकर पौद—पैदा करके फ़सल उगाते हैं। बल्कि इन पौदों के खास भाग ही खेतों में बोकर नई फ़सल पैदा की जाती है; जैसे गन्ना, आलू, बण्डा, अदरक़। ऐसी फ़सलों का बीज खेतों में नहीं बोया जाता। गन्ने के तने के टुकड़े काट-काट कर बोए जाते हैं, जो अगली फ़सल में पैदावार देते हैं। इसी प्रकार से आलू और बण्डा के टुकड़े करके बोए जाते हैं।

कुछ फ़सलें ऐसी भी हैं जिनका गवा काट-काट कर खेत में लगाया जाता है; जैसे शकरकन्द। इस फ़सल का न तो बीज ही खेत में बोया जाता है, न शकरकन्द ही खेत में लगाई जाती है। बल्कि इसकी बेल के टुकड़े काट-काट कर खेत में लगाते हैं।

उक्त बातों के वर्णन से सिद्ध हुआ कि भिन्न-भिन्न फ़सलों को बोने के लिए भिन्न-भिन्न तरीके हैं। इसलिए फ़सलों की बुवाई भी एक गहन विषय है। जिसका समुचित वैज्ञानिक-ज्ञान प्राप्त किए बिना कृषि से लाभ की संभावना नहीं है।

बीजों के बोने की जो बातें ऊपर बतलाई गई हैं; उससे प्रकट

होता है कि कुछ फसलों के बीज तो संचय करके वैज्ञानिक रीतियों से बीज-भण्डारों में सुरक्षित करके रखे जाते हैं, जो बुवाई के समय बोने के काम आते हैं। अतिरिक्त इसके कुछ बीज ऐसे हैं जो खेतों में ही फसलों के रूप में खड़े रहते हैं। उन्हीं खेतों से ही काट कर उन्हें बोया जाता है। इसलिए दोनों प्रकार के बीजों को सुरक्षित रखना पड़ता है। चाहे फसलों के बीज, बीज-भण्डारों में सुरक्षित रखे जांय, चाहे कृषि-क्षेत्रों पर हरी दशा में रहें। हर हालत में इनका शुद्ध, निरोग तथा स्वस्थ रहना आवश्यक है।

वर्तमान काल में खेतों की तैयारी करने के बाद किसान लोग बोने के लिए शुद्ध, निरोग तथा स्वस्थ बीज की तलाश बहुत ही कम करते हैं। अधिकतर किसान लोग अपने घरों में रखे हुए या महाजनों द्वारा जो बीज बाँटा जाता है, उसे लेकर खेतों की बुवाई करते हैं। बहुत से किसान बाजारों में जो अन्न खाने के लिए बिकता है उसे भी खरीद कर बो देते है। इन रीतियों से जो खेत बोए जाते हैं, उनसे उन लोगों को तो हानि होती ही है। साथ ही साथ आस-पास के किसानों को भी जो स्वस्थ, निरोग बीज सरकारी बीज-भण्डारों से लाकर बोते हैं; उन्हें भी पूर्ण रीति से हानि उठानी पड़ती है।

इसका मुख्य कारण यह है कि जिस प्रकार से मनुष्यों और जानवरों में यदि किसी को छूत की बीमारी हो गई तो उसके द्वारा स्वस्थ मनुष्यों तथा जानवरों में भी छूत की बीमारी फैल जाती है। इसी प्रकार से जिन किसानों ने अपनी असावधानी से रोगी तथा

अस्वस्थ बीज बोया है यदि उनकी फ़सलों में रोग लग गया तो गाँव की फ़सलों का सारा क्षेत्रफल बर्बाद हो जाता है। ऐसी अवस्था में फ़सलों की पैदावार मारी जाती है। जिससे उस ग्राम की आर्थिकावस्था का पतन हो जाता है। इसलिये ग्रामों में सहयोग-समितियों की स्थापना करके इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि ग्रामों में सब लोग ऐसे बीजों की बुवाई करें जो वैज्ञानिक-दृष्टि कोण से शुद्ध निरोग और उन्नति प्राप्त हों।

बहुत से लोगों में यह धारणा फैल गई है कि सरकार बीज बाँटने का काम तथा उसके द्वारा जो व्यवसाय होता है, उसे अपने हाथ में लेना चाहती है। देहात में जो लोग बीज का लेन-देन करते हैं उनके व्यवसाय को नष्ट करना चाहती है। वास्तव में उक्त धारणा में कोई तथ्य नहीं है। देहात में देशी-महाजन जिस प्रकार से रुपये का लेन-देन करते हैं उसी प्रकार से बहुत से महाजन ग़ल्ले का भी लेन-देन करते हैं। ग़ल्ले का लेन-देन करने वाले महाजनों को इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि जो बीज हम किसानों को दे रहे हैं, उसके बोने से पैदावार अच्छी होगी या ख़राब। उनका ध्येय तो ग़ल्ले का बाँटना और अपना व्यवसाय चलाना रहता है।

ऐसे देशी महाजन वैशाख, ज्येष्ठ में किसानों से बीज लेकर इकट्ठा कर लेते हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि किस किसान का बीज; बीज की दृष्टि से उपयुक्त है और किस किसान का बीज बोने योग्य नहीं है, बल्कि खाने योग्य है। इन बातों पर विचार

न करके सभी प्रकार के उत्तम, मध्यम, निकृष्ट श्रेणी के बीजों को खत्तियों में इकट्ठा कर लेते हैं।

यही महाजन सावन-भादों में जब किसानों के पास खाने के लिये अन्न नहीं होता तो खत्तियों का कुछ भाग खोलकर 'खौंही' के नाम से सवाये तथा ड्योढ़े पर किसानों को अन्न बाँटते हैं। सावन-भादों में जितना अन्न बँट जाता है उसके अतिरिक्त जो अन्न खत्तियों में अवशेष रह जाता है, उसे क्वार-कार्त्तिक में बोने के लिये पुनः बाँटते हैं। अधिकतर वही किसान जो देशी-महाजनों से सावन-भादों में खौंही के रूप में अन्न ले गये थे; क्वार-कार्त्तिक में बोने के लिये अन्न ले जाते हैं।

देशी महाजनों द्वारा वितरण किया हुआ अन्न न तो बीज की दृष्टि से ही एकत्रित किया जाता है, न बीज की दृष्टि से गोदामों में रखा ही जाता है। इस कारण देशी महाजनों का बीज बोए जाने पर ठीक रीति से उगता नहीं है। ऐसे बीजों को अनुभव के लिये बोने पर ज्ञात हुआ है कि इन बीजों में उगने की शक्ति ५० प्रतिशत से लेकर ७० प्रतिशत तक पाई जाती है। जब ऐसे बीजों के उगने में ही इस प्रकार की त्रुटि है तो बढ़कर फ़सल से पैदावार प्राप्त करने के परिणाम का अन्दाज़ा पाठकगण स्वयं कर सकते हैं।

मेरा विचार उल्लिखित बातों के वर्णन करने का यह है कि देहातों में बुवाई के समय जिन बीजों को बोने के काम में लाया जाता है; वह बीज उन्नति-प्राप्त-कृषि की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त हैं। ऐसे बीजों की बुवाई से हमारे देश के किसानों को लाभ नहीं

पहुँच सकता; न कृषि-व्यवसाय से उनकी आर्थिकावस्था ही सुधर सकती है। यह बात भले ही ठीक हो कि ऐसे बीजों की बुवाई से खाने-पीने के लिये कृषकों को किसी न किसी तरह से मेहनत करने पर इतना अन्न उपज के रूप में मिल जाय कि वह अपनी गुज़र बसर कर लें।

आजकल का ज़माना अब ऐसा नहीं रहा कि थोड़ी आय में गुज़र करने के लिये सभी प्राणी त्याग का जीवन व्यतीत करें। दुनिया की रंगत बदल गई है। जो किसान अपने बाल-बच्चों को शिक्षा नहीं देता या बच्चों की शादी पढ़ने-लिखने के बाद पढ़ी लिखी लड़कियों से नहीं करता, उसका कुटुम्ब स्मशान घाट हो जाता है। उसके घर के प्राणी कलह का जीवन आर्थिक-कठिनाइयों के कारण बिताते हैं। इसलिये पारिवारिक आय को बढ़ाने के लिये अब कृषि-व्यवसाय में देशी महाजनों के बीजों का त्याग करना पड़ेगा। खेतों की बुवाई के लिये उन्नति प्राप्त सुधरे हुये बीजों को खेतों में बोना पड़ेगा, जिससे फ़सलों से देशी महाजनों के बीजों की अपेक्षा पैदावार अधिक मिले।

देशी-महाजनों के बीजों से जो बुवाई होती है, उसकी उपज की खपत अधिकतर देहातों की ही बाज़ारों में होती है। देश के बड़े-बड़े नगरों में तथा विदेशों में ऐसे बीजों की खपत नहीं होती इसलिये हमारे देश के किसानों को फ़सलों की उपज के रूप में उचित मूल्य नहीं मिल सकता।

वर्तमान काल में हमारे देश का सम्बन्ध व्यावसायिक दृष्टि

से संसार के अन्यान्य देशों से हो गया है। इसलिये हमारी वस्तुएँ विदेशों की वस्तुओं के मुक़ाबिले में बाज़ारों में परख कर खोटी और खरी कही जाती हैं। इसलिये अब समय आ गया है कि हम खेतों में अच्छी जाति के बीज बोकर उत्तम फ़सल तैयार करें। ऐसी फ़सलों से जो उपज होगी, उससे जो आय होगी वह हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकेगी।

प्राचीन काल से जो बीज हमारी खेतों में बोये जाते थे; उन बीजों को केन्द्रीय कृषि-विभाग तथा प्रान्तीय कृषि-विभाग ने सरकारी फ़ार्मों पर एकत्रित करके अनुभव किया। जो बीज उपज की दृष्टि से अच्छी पैदावार देने वाले जँचे उनको बोने के लिये किसानों में वितरित किया जाता है। पैदावार की दृष्टि को छोड़कर इस बात पर भी कृषि-विभाग के विद्वानों ने विचार किया है कि इन बीजों में फ़सलों के रोगों का आक्रमण भी न हो सके। जिससे रोगों के द्वारा जो हानि होती थी वह भी इन उन्नति-प्राप्त बीजों के प्रचार से अब जाती रही है।

उन्नति-प्राप्त सुधरे हुये बीज सरकारी कृषि-विभाग की गोदामों से जो देहातों में स्थापित हैं, मिल सकते हैं। यद्यपि इन गोदामों से बीज सवायें, नक़द, उधार सभी रीतियों से मिल सकता है। किन्तु कृषि-विभाग का प्रधान उद्देश्य यह है कि देहातों में हरेक ग्राम में किसानों की ऐसी सहयोगी-पंचायतें क़ायम हो जायँ जो स्वयं उन्नति प्राप्त बीजों का संरक्षण और लेन-देन करें। जिससे उन्नति-प्राप्त बीजों के लेन-देन से जो लाभ सरकारी बीज

गोदामों को होता है, वह सहयोगी समितियों द्वारा किसानों को ही हो।

हरेक ग्राम में जितने किसान हों उन्हें आपस के मेल-जोल से अपने ग्राम में सहयोग-समिति की स्थापना करके उस समिति द्वारा कृषि-विभाग से एक बार सभी उन्नति-प्राप्त बीज मँगा लेना चाहिये। आरंभ में बीज कृषि-विभाग द्वारा पंचसाला बिना सूदी स्कीम पर अथवा दस प्रति सैकड़े ब्याज पर समिति के अधिकारियों को मिल जायगा। इस बीज को जो कृषि-विभाग से मिले किसानों को पूरे गाँव में हरेक खेत में बुवाने की कोशिश करना चाहिये। इस रीति से हरेक ग्राम में उन्नति-प्राप्त बीज फैल जायगा। दूसरा लाभ यह होगा कि जो आय बीज के लेन-देन से देशी-महाजनों को हुआ करती थी; वह आय ग्राम की सहयोग समिति को होगा। उसका उपयोग ग्राम के सभी किसानों के हितार्थ सब लोगों की राय से किया जा सकता है। इस रीति से बुवाई के समय किसानों को सभी फ़सलों की बुवाई के लिये उन्नति-प्राप्त सुधरे हुये बीज मिल सकते हैं।

बुवाई के समय उन्नति प्राप्त सुधरे हुये बीजों का प्रबन्ध प्रत्येक ग्राम को अपने ग्राम की सहयोग-समितियों के द्वारा सरकारी कृषि-विभाग की सहायता से करना चाहिये। फ़सलों के सभी बीज जैसे गेहूँ, जव, चना, मटर, गन्ना, आलू, सरसों, धान, अलसी, मक्का, ज्वार, बाजरा के उन्नति-प्राप्त बीज सरकारी कृषि-विभाग से मिल सकते हैं। इसके प्राप्त करने के सभी ज़रिये इतने

सुगम और कम ख़र्च के बना दिये गये हैं, जिनके द्वारा किसानों की ग्रामों में स्थापित सहयोग-समितियों को हरेक प्रकार से लाभ है।

यद्यपि कृषि-विभाग से जो बीज बोने के लिये किसानों को सहयोग-समितियों द्वारा मिलेगा वह हरेक दृष्टि से परीक्षित शुद्ध तथा निरोग होगा। फिर भी बीजों की परीक्षा करना कि उनमें प्रतिशत उगने की क्या शक्ति है, आवश्यक है। बीजों की परीक्षा बिना किये हुये कभी भी बीजों को खेतों में बोना नहीं चाहिये। प्राचीन-काल में भी बीजों की परीक्षा बुवाई के पहिले होती थी। क्वार के दूसरे पक्ष में नवरात्र के समय जब हिन्दू जाति के किसान दुर्गा पूजा करते हैं, तो मिट्टी के कलश में जव इत्यादि अन्नों को गीली मिट्टी में गाड़कर उसके उगने की शक्ति की परीक्षा आज तक करते हैं। दशहरे के त्योहार पर यहीं जव के पौदे की जड़ शुभ कामना के लिये काश्तकारों में आपस में वितरण करने का रवाज़ आज तक प्रचलित है।

बीजों की परीक्षा करने का नियम बुवाई के पहिले हमारे देश में प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसलिये बुवाई के पहिले बीजों की परीक्षा करना आवश्यक है। जिन बीजों को खेत में बोना हो उस जाति के बीज को जहाँ पर वह रक्खा हो हरेक बोरे से परखियों द्वारा या बखार के चारों ओर से थोड़ा २ दाना लेकर मिला लेना चाहिये। अन्त में इस मिले हुये दाने में से गिन कर सौ दाना निकालना चाहिये। इस सौ दाने को खेत की

किसी क्यारी में, या गमलों में बो देना चाहिये। बोने के बाद उस बीज का प्रति दिन निरीक्षण करते रहना चाहिये, नहीं तो गिलहरियाँ तथा चिड़ियां इन बीजों को खा जायेंगी।

लगभग एक सप्ताह में बीज उग आयेगा। जब बीज उग आवे तो उगे हुये बीजों को गिनकर देखना चाहिये कि सौ बीज में से कितने बीज उगे हैं। इन उगे हुये बीजों में से कितने स्वस्थ तथा हरे-भरे पौदे हैं। यदि सौ बीजों में से पनचानबे बीज भी उगकर हरे-भरे पौदे दे सकें तो ऐसे बीजों को उत्तम श्रेणी का बीज समझना चाहिये। ऐसे बीजों की बुवाई से उत्तम श्रेणी की पैदावार की आशा करनी चाहिये। यदि पनचानबे से कम बीज उगें तो उन्हें मध्यम श्रेणी का बीज समझना चाहिये; जहाँ तक संभव हो ऐसे बीजों की बुवाई न करना चाहिये। अधिकतर ९० प्रतिशत तक उगने वाले बीजों की बुवाई लोग करते हैं। किन्तु ९० प्रतिशत उगने वाले बीजों की गणना मध्यम श्रेणी के बीजों में की जाती है।

उत्तम श्रेणी के शुद्ध तथा निरोग बीजों को उगने के लिये जब खेतों में बो दिया जाता है तो वह उग आते हैं। बहुत से खेत जिनमें नमी नहीं रहती बीज नहीं उगता। बहुत से किसान बोने के पश्चात् जब खेतों की सिंचाई करते हैं तो बहुत से बीज उगते हैं। इसका क्या कारण है? इसका प्रधान कारण यही है कि बीज को उगने के लिये नमी की विशेष आवश्यकता होती है। बीजों को यदि खेत में न बोकर पानी से तर करके किसी तश्तरी

में या सोख्ते के टुकड़ों पर ढककर रख दीजिये तब भी वह उग आवेगा। किन्तु उगने के कुछ दिनों बाद आप से आप सूख जायगा।

उक्त बातों पर विचार पूर्वक मनन करने से पता चलेगा कि बीज भी मनुष्यों और जानवरों के समान जीवधारी पदार्थ हैं। बीज के जीवधारी पदार्थ होने की सारी बातें वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दी हैं। बीज और पौदे की जीवन-चर्य्या वनस्पति विज्ञान का मुख्य अंग है। इसलिये उस विषय को विस्तार रूप से यहां न छेड़कर केवल उन थोड़ी सी बातों का वर्णन किया जायगा जो इस पुस्तक के पाठकों के लिये आवश्यक है।

जिस प्रकार से माता के गर्भाशय में पुरुष जाति का बच्चा जीवित रहता है। जब यही बच्चा माता के उदर से उत्पन्न होता है तो अपने आप दूध पीकर बढ़ता है। उसी प्रकार से प्रत्येक बीज में पौदे को पैदा करने वाला अंकुर जिसे अँखुआ कहते हैं बीज के अन्दर मौजूद रहता है। यही बीज जब तक मिट्टी के घड़ों में तथा बखार में सूखी जगह में रक्खा रहता है तब तक नहीं उगता। ज्योंही बीज को पानी का अंश अर्थात नमी मिलती है, त्योंही उग आता है। जैसे चना, मटर को यदि भिगो दीजिये तो बीज फूलकर आकार-प्रकार में मोटा हो जायगा। दो एक दिन में यही बीज अँखुआ देने लगेगा। इससे सिद्ध हुआ कि बीज के अन्दर अँखुआ पहिले ही से मौजूद रहता है जो नमी पाने

पर बीज के फूल आने पर अपने आप उग आता है। इससे यह बात सिद्ध हो गई कि बीज को उगने के लिये नमी की विशेष रूप से आवश्यकता है। यदि खेतों में पर्य्याप्त रूप में नमी मौजूद न रहेगी तो बीज कभी भी भली प्रकार से न उगेगा।

बीज को उगने के बाद यदि कुछ बीजों को ऐसी जगह में रख दिया जाय जहाँ सूर्य्य की रोशनी न पहुँच सके अर्थात अँधेरे कमरे में। प्रतिकूल इसके कुछ उगे हुये बीजों को ऐसे स्थान में रखिये जहाँ सूर्य्य की रोशनी पूर्ण मात्रा में पहुँचती हो। उक्त स्थानों में रखे हुये बीजों का निरीक्षण प्रति दिन करते जाइये। कुछ दिनों के बाद आपको पता चलेगा कि अँधेरे में रखा हुआ बीज का पौदा मुर्झा रहा है, प्रतिकूल इसके सूर्य्य की रोशनी में रखा हुआ पौदा लहलहा रहा है। इससे सिद्ध हुआ कि बीज को उगने और बढ़ने के लिये जिस प्रकार से नमी की ज़रूरत है उसी प्रकार से सूर्य्य की गर्मी और प्रकाश की भी ज़रूरत है।

जो पौदा बीज से उगकर सूर्य्य की गर्मी और प्रकाश में लह-लहाता रहता है उसे वायु भी बराबर मिलती रहती है। अँधेरे कमरे में रखे हुये बीज के पौदे को वायु पूर्ण रूप से नहीं मिलती इसलिये पौदा मुरझा जाता है। बीज को उगने के लिये नमी, सूर्य्य की गर्मी, प्रकाश तथा वायु की अत्यन्त आवश्यकता होती है। उक्त बातें यदि बीज के लिये खेतों में पूर्णरूप से नहीं पहुँच सकेंगी तो बीज ठीक रीति से उग नहीं सकता।

अतएव बीजों को उगने के लिए तथा उगकर बढ़ने के लिए

खेतों में नमी, सूर्य की गरमी तथा वायु का संचालन उचित रूप में होना आवश्यक है।

बीज में उक्त आवश्यक बातों के संयोग से जब अंकुर उग आता है तो पहिले यह अंकुर बीज में जो .खूराक़ जमा रहती है उसे ही खाकर बढ़ता है। यदि किसी उगते हुए बीज को चाक़ू से चीर कर माइक्रोसकोप द्वारा बीजों के भीतरी भागों का निरीक्षण किया जाय तो पता चलेगा कि बीज के भीतर अँखुए की जो .खूराक़ पहिले ठोस दशा में जमी हुई थी वह भी नमी पाकर नरम तथा तरल अवस्था में परिवर्तित हो गई है। इस नरम और तरल अवस्था में परिवर्तित हुई बीज की .खूराक़ को बीज का अँखुआ चूस-चूस कर बढ़ता है, जब अँखुआ बढ़ रहा हो तो उसका निरीक्षण करने से पता चलेगा कि अँखुआ तो ऊपर की ओर बढ़ रहा है जिसमें हरी-हरी पत्तियाँ निकल रही हैं। प्रतिकूल इसके नीचे के भाग में सूत के समान बहुत से रेशे इधर-उधर फैले हुए हैं। सूत के समान यह रेशे बीज द्वारा उत्पन्न अँखुए की—जो बाद में पौदा हो जायगा जड़ें हैं। जब तक बीज में .खूराक रहती है तब तक बीज का अँखुआ और जड़ें अपने आप बढ़ती हैं। जब बीज की .खूराक समाप्त हो जाती है तो बीज द्वारा उत्पन्न अँखुए की जड़ों द्वारा भूमि से अँखुआ अपनी .खूराक़ ग्रहण करता है। इस प्रकार से जड़ों द्वारा भूमि से .खूराक़ ग्रहण करके अँखुआ बढ़कर पौदा हो जाता है। अन्त में बीजों के पौदे ही फ़सल के रूप में अन्न देकर कृषकों को समृद्धिशाली बनाते हैं।

पौदे जब बढ़ जाते हैं तब मनुष्यों की भाँति इसमें नर तथा मादा पौदे भी पाए जाते हैं। किन्तु ऐसे पौदों की संख्या अधिक है जिसमें पौदों के नर तथा मादा के भाग एक ही पौदे में पाए जाते हैं। जिन पौदों में नर तथा मादा के पौदे अलग-अलग होते हैं उनमें नर पौदों में तो केवल फूल उत्पन्न होता है। मादा पौदों में इन नर पौदों के फूलों के संयोग से फल लगता है; यह बात पपीते के पौदों में भली प्रकार से निरीक्षण की जा सकती है।

अधिकांश पौदों में नर और मादा के भाग एक ही पौदे में पाए जाते हैं, जो वायु के द्वारा हिलने-डुलने से आपस में मिल जाते हैं या मधु-मक्खियों तथा तितलियों द्वारा अथवा इसी प्रकार के अन्यान्य कीड़ों द्वारा जो फूलों का रस चूसा करते हैं, मादा तथा नर भाग का संयोग हो जाता है, जिससे पौदों में फल लगता है। तथा बीज उत्पन्न होता है।

बीज उत्पन्न करने की इन प्राकृतिक क्रियाओं का अध्ययन करके आजकल के वनस्पति-विज्ञान वेत्ताओं ने बहुत से नये क़िस्म के भी बीज उत्पन्न कर दिये हैं। जैसे किसी बीज में यदि यह गुण है कि उसमें रोग नहीं लगता किन्तु वह पैदावार की दृष्टि से अनुपयुक्त है। इसी प्रकार से यदि किसी बीज की पैदावार अच्छी है, किन्तु उसमें रोगों के आक्रमण को रोकने की शक्ति नहीं है, जिसके कारण उसकी पैदावार मारी जाती है—तो दोनों के संयोग से एक नई जाति का बीज पैदा करके उस नए पौदे को उत्पन्न किया जाता है। इस नए पौदे द्वारा जो बीज उत्पन्न होता है उसमें

पैदावार तथा रोगों के आक्रमण से बचने के गुण पाये जाते हैं। इस रीति से वर्णशंकर जाति के उन्नति-प्राप्त बीज कृषि-विभाग द्वारा उत्पन्न करके प्रचलित किये गये हैं।

उन्नति-प्राप्त बीजों की बुवाई

बीजों की वैज्ञानिक बातों का संक्षिप्त वर्णन पाठकों की जानकारी के लिये अब तक किया गया है। अब बीजों की बुवाई की रीतियों का वर्णन किया जायगा। उन्नति प्राप्त सुधरे हुये बीजों की बुवाई भी आजकल वैज्ञानिक रीतियों से की जाती है; जिससे फ़सलों द्वारा उपज भी अधिक होती है तथा निकाई-गुड़ाई करने वाले नवीन वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र भी खेतों में मनुष्यों तथा जानवरों द्वारा आसानी से चलाये जा सकते हैं। जिनके द्वारा मजदूरी और समय में बचत होती है।

प्राचीन काल में हमारे देश में फ़सलों की बुवाई अधिकतर बीजों को खेतों में हाथ से छिटक कर की जाती थी। जैसे ज्वार बाजरा, अरहर, चना, अलसी की बुवाई आज तक छिटकवाँ रीति से किसान लोग करते हैं। छिटकवाँ रीति से बहुत सी फ़सलों की बुवाई की जाती है। जिससे पौदे बहुत ही घने उगते हैं। घने पौदों की निकाई-गुड़ाई केवल खुरपी द्वारा ही हो सकती है। इस रीति से पौदे बहुत ही घने रहते हैं, जिससे पौदों की उपज अच्छी नहीं होती। किन्तु तो भी महीन बीजों को छिटकवाँ रीति से बोना चाहिये। क्योंकि बहुत सी फ़सलों के बीज जो

महीन होते हैं, क़तारों में हल के पीछे कूढ़ों में बोये ही नहीं जा सकते।

छिटकवाँ रीति के बाद आजकल बहुत सी फ़सलों के बीजों को क़तारों में बोने का रवाज़ प्रचलित हो गया है। क़तारों में बीज दो रीतियों से बोये जाते हैं। पहिली रीति तो यह है कि हल के पीछे कूढ़ों में बीज डालते हैं। कहीं कहीं हल में "माला-बांसा" लगा रहता है।

हल के पीछे "माला-बांसा" द्वारा बोने से बीज उगता तो क़तारों में है। किन्तु इस रीति से क़तारें बहुत ही नज़दीक-नज़दीक रहती हैं। इस रीति से गेहूँ, जव, मटर, चना इत्यादि फ़सलों की बुवाई की जाती है। उक्त फ़सलों की बुवाई के समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि बीज इतनी गहराई पर पड़े जहाँ उसे खेत में पर्य्याप्त-मात्रा में नमी मिल जाय, जिससे वह उग सके।

देहातों में हल के पीछे कूढ़ों में तथा माला-बांसा से बोने की प्रथा अधिकतर प्रचलित है। बुवाई करने वाली कृषक-स्त्रियाँ इस रीति से बीजों को भली प्रकार से बो लेती हैं। किन्तु वर्तमान काल में वैज्ञानिक रीति से बुवाई करने के लिये बोने की मशीनों का भी चलन हो गया है।

बोने की मशीन का चित्र आगे चित्रित किया गया है। इन मशीनों द्वारा बीज एक साथ कई कूढ़ों में गिरता है। दूसरे बीज गिरने की गहराई भी समान रहती है यह मशीन बैलों द्वारा चलाई जाती है। बीज को रखने के लिये मशीन में एक भाग भी बना

हुआ है। बीजों की बुवाई के लिये यह मशीनें भी व्यवहार में लाई जाती हैं।

बीज बोने की मशीनें वहीं पर लाभप्रद सिद्ध होंगी, जिन गाँवों में सहयोग-समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। साथ ही फ़सलों की चकबन्दी का रवाज़ भी प्रचलित हो गया है और गाँव के सभी किसान फ़सलों की चकबन्दी के लाभों से अवगत हो गये हैं।
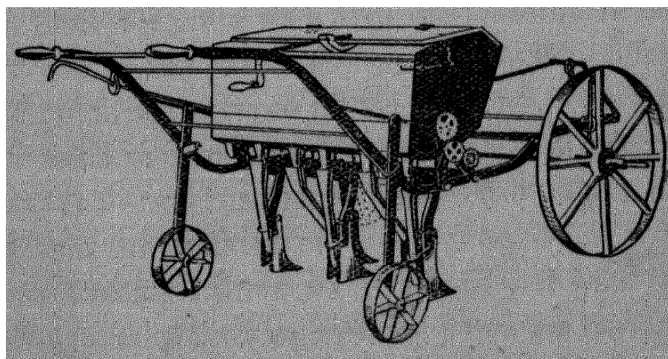
चित्र नं० १

बीज बोने की मशीन

ऐसे ग्रामों के अतिरिक्त जो लोग बड़े क्षेत्रफल में खेती करते हैं उन लोगों के लिये भी यह बोने की मशीनें लाभप्रद हैं। जिन गाँवों तथा स्थानों में इनकी उपयोगिता लाभप्रद हो वहाँ पर इनका उपयोग आवश्यक है।

फ़सलों के बीजों को छिटक कर तथा हल के पीछे कूढ़ों में एवं मालावाँसा से बोने के अतिरिक्त मशीनों द्वारा बुवाई का

प्रचार आजकल हो रहा है। उक्त रीतियों में कुछ ही फ़सलें बोई जा सकती हैं। बहुत सी फ़सलें ऐसी हैं, जो क़तारों में पर्याप्त दूरी पर बोये जाने पर ही अच्छी उपज देती हैं। ऐसी फ़सलों के पौदे यदि जब गेहूँ के समान घने होंगे तो पैदावार अच्छी न होगी। जैसे मक्का, कपास, ज्वार, बाजरा इत्यादि फ़सलों के बीजों को यदि छिटक कर घना बो दिया जायगा तो अच्छी पैदावार प्राप्त नहीं की जा सकती। दूसरे खरीफ़ में हल के पीछे इन फ़सलों को कूढ़ों में बो भी नहीं सकते। इसलिये खेतों की जुताई करने के बाद खेतों में पाटा देना चाहिये; जब खेत समतल हो जाय तो एक फ़ीट डेढ़ फीट, या दो फीट की दूरी पर अर्थात् जिस फ़सल के लिये जैसा आवश्यक हो, रस्सी से निशान बनाकर क़तारों में फ़सलों की बुवाई करना चाहिये। क़तारों में फ़सलें कई दृष्टियों से बोई जाती हैं। कुछ फ़सलें तो क़तारों में अकेली बोई जाती हैं। कुछ फ़सलें क़तारों में मिलवाँ बोई जाती हैं। क़तारों में कुछ फ़सलों के तो बीज बोये जाते हैं, जैसे मक्का, कपास, अरंडी इत्यादि। इसके अतिरिक्त क़तारों में कुछ पौदों की पौद लगाई जाती है, जैसे टमाटर, गोभी, भाँटा, मिर्च।

क़तारों में कुछ फ़सलों की बुवाई पानी भरे हुये खेतों में भी करनी पड़ती है, जैसे अगहनी धान की बेहन लगाने का रवाज है। जो फ़सलें क़तारों में बोई जाती हैं; उन्हें आवश्यक दूरी पर बोने के लिये पहिले खेतों में रस्सी से निशान लगाना आवश्यक है। बुवाई के समय लगभग सौ गज़ लम्बी पतली रस्सी जो सनई या

पटसन के रेशे की बनी हुई हो साथ में रखना आवश्यक है। इस रस्सी के दोनों सिरे पर दो लोहे या बाँस की खूँटिया भी रखना बहुत ज़रूरी है। इन खूटियों को खेत के किनारों पर गाड़कर निशान लगा देना चाहिये। निशान लगाने के लिए बांस का डण्डा भी पास में रखना चाहिये। रस्सी के पास बांस के डंडो से तथा पैर से निशान बनाया जा सकता है।

सीधी क़नारों को बनाने के लिए आजकल कुछ कृषि-यन्त्र भी बनाए गए हैं, जिनमें निशान लगाने का भी भाग लगा रहता है। खेत में जब निशान लग जाय तो खूँटी और रस्सी को उखाड़ कर पर्याप्त दूरी पर जिस फसल के लिए जितनी दूरी आवश्यक हो दूसरा निशान लगाना चाहिए। इस रीति से क़नारों में बोने के लिए खेतों में निशान लगाकर बोना आवश्यक है।

जो फ़सलें क़नारों में बोई जाँयगी उन फसलों की निकाई गुड़ाई वर्तमान काल में जो नए कृषि-यन्त्र बन गए हैं, उनके द्वारा आसानी से होगी; यह कृषि-यन्त्र पशुओं तथा मनुष्यों द्वारा आसानी से खेतों में चलाए जा सकते हैं।

क़नारों में कुछ फ़सलें तो अकेली बोई जाती है, कुछ फ़सलों के साथ दूसरी फ़सलों को मिलाकर भी बोने का रवाज़ प्रचलित हो गया है। जैसे मूँगफली की पांच क़नारों के बाद अरहर की छठवीं क़नार देते हैं। इसी प्रकार से लाल मिर्च की पांच क़नारों के बाद छठवीं क़नार अरण्डी की देते हैं।

क़नारों में बोई जाने वाली जो फ़सलें अकेली बोई जाती हैं

उनके कट जाने के बाद दूसरी फ़सलें बोई जा सकती हैं। किन्तु जिनमे अरहर और अरण्डी की भी क़तारें दे दी जाती हैं, वह खेत साल भर तक अरहर और अरण्डी की फ़सलों मे फँसे रहते हैं। किन्तु तो भी क़तारों मे फसलों को बोना लाभदायक है। क़तारों मे उन्नति-प्राप्त फसलों को बोने से अधिक उपज होती है।

क़तारों मे फसलों को बोने के लिये रस्सी और खूँटी से निशान बनाकर बोने के लिये खुरपी की भी आवश्यकता होती है। खुरपी से कतारों मे बीज बराबर दूरी पर गाड़ दिये जाते हैं। बाद मे जब पौदे घने होते हैं, तो उन्हें उखाड़कर छिदरा कर दिया जाता है।

कुछ फसलें ऐसी हैं, जो सपाट खेत में क़तारों में बोई जाती हैं, कुछ फसलें ऐसी हैं, जिनके लिये डुडुही बनानी पड़ती है, जैसे गन्ना और आलू के लिये। इन फ़सलों को बोने के लिये पहिले खेतों मे नालियां खोदी जाती हैं। इन नालियों को खोदने के लिये भी पहिले रस्सी और खूँटी की आवश्यकता होती है।

जब खेत मे क़तारों के निशान लग जायँ तो फावड़े से नालियां खोदी जाती हैं, गन्ने की नालियां अधिकतर तीन-चार फ़ीट की दूरी पर होती हैं। फ़सल बोने के तीन-चार मास पहिले गन्ने की नालियाँ बनाई जाती हैं। इन नालियों की कमाई भी फ़सल को बोने के पहिले करनी पड़ती है।

गन्ने की फ़सल तो नालियों में ही बोई जाती है। किन्तु आलू

और शकरकंद की फसल नाली के पास जो रारी बनी हुई रहती है, जिसे कहीं-कहीं डुडुही भी कहते हैं, उस पर बोई जाती है।

क़तारों में इन फसलों को इसलिये पर्याप्त दूरी पर बोते हैं कि इन फसलों के पौदे लम्बाई में अधिक बढ़ते हैं। वर्षा-काल में या जब कभी पानी बरस जाता है तो इन पौदों की जड़ें पौदों का बोझा सम्हाल नहीं सकतीं। इस कारण पौदे भूमि पर गिर पड़ते हैं। जिन फसलों के पौदे भूमि पर गिर पड़ते हैं उनकी पैदावार अच्छी नहीं होती। इसलिये क़तारों में बोने के बाद जब यह पौदे पर्याप्त रूप से बढ़ जाते हैं तो क़तारों के बीच खेत में जो मिट्टी रहती है उसे पौदों की जड़ों पर चढ़ा देते हैं। इस रीति से जब पौदों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ जाती है तो पौदे मज़बूत पड़ जाते हैं फिर पानी के बरस जाने पर या हवा के झोंकों से नहीं गिरते।

उक्त बातों के वर्णन से यह पता चलता है कि बीजों के बोने के लिये चार रीतियां प्रचलित हैं। पहिली रीति तो छिटकवां है। दूसरी रीति क़तारों में बोना है। तीसरी रीति खालिस फसलों का बोना है। चौथी रीति मिलवाँ फसलों का बोना है। उक्त रीतियों में से क़तारों में खालिस फ़सलों का बोना अधिक लाभप्रद तथा वैज्ञानिक है। किन्तु जो फसलें इन रीतियों से अच्छी उपज न दे सकें, उन्हें छिटकवाँ रीति से दूसरी फसलों के साथ मिलाकर अवश्य बोना चाहिये।

बुवाई की इन रीतियों के अतिरिक्त आजकल एक ही क़िस्म

की फ़सलों को चकों में बोने का रवाज़ भी प्रचलित किया जा रहा है। अधिकतर देहातों में जाकर देखा जाता है तो पता चलता है कि एक किसान ने अपने किसी खेत में बाजरा बोया है, तो दूसरा किसान उसीके पास ज्वार बोता है, तीसरा किसान पास में ही जव के लिये चौमास छोड़ता है; चौथा किसान पास में ही गेहूँ बोता है। यह रीति वैज्ञानिक-दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। किसानों को आपस के सहयोग से सहयोग-समितियों द्वारा एक राय होकर फ़सलों की चकबन्दी करना चाहिये।

फ़सलों की चकबन्दी में बुवाई

फ़सलों की चकबन्दी करने का यह अभिप्राय है कि गाँव के सभी किसान आपस में मिलकर यह तय कर लें कि जिन-जिन लोगों को गन्ना बोना हो वह गाँव के किसी ख़ास रक़बे में ही बोया जाय - अर्थात गाँव के सब किसानों का गन्ना एक ही स्थान पर हो. इससे बुवाई निकाई-गुड़ाई, सिंचाई, रखवाली, पेराई तथा गुड़ बनाने में आसानी होगी। तितर-बितर खेतों में बोने से वह सुविधाएँ जो सहयोग द्वारा प्राप्त हो सकती हैं, न हो सकेंगी।

जिस प्रकार से गन्ने की फ़सलों की चकबन्दी की जाय उसी प्रकार से गेहूँ, जव, मक्का अर्थात सभी फ़सलों की चकबन्दी देहातों में करके फ़सलों को उगाना चाहिये. यदि देहातों में ख़रीफ़ तथा रबी की फ़सलों की चकबन्दी ठीक रीति से हो जाय तो

बुवाई की सभी वैज्ञानिक बातें जो आजकल के लिये उपादेय हैं सरलता से प्रयोग में आने लगीं। फ़सलों की चकों में बुवाई करना वर्तमान काल में हरेक दृष्टि से आवश्यक है।

क्यारी-बरहे बनाना

जब फ़सलों की बुवाई समाप्त हो जाती है तो कुछ फ़सलों में जिनमें कुओं से तथा अन्यान्य साधनों से सिंचाई का प्रबन्ध करना पड़ता है। सिंचाई के लिये क्यारी-बरहे बनाना पड़ता है। बुवाई के बाद तथा बीजों के उगने के पहिले ही खेतों में क्यारी-बरहे बनाना अतीव आवश्यक है। अधिकतर ख़रीफ़ की फ़सलों में जिनकी सिंचाई वर्षाकाल में अपने आप होती रहती है क्यारी-बरहे नहीं बनाना पड़ता। किन्तु कुछ फ़सलों में जिनमें वर्षा काल के बाद सिंचाई की आवश्यकता होती है; क्यारी-बरहे बनाना आवश्यक है।

अधिकतर रबी की फ़सलों में जैसे गेहूं, जव, मटर इत्यादि की सिंचाई आवश्यक होती है। इन फ़सलों को बोने के बाद इनके खेतों में क्यारी-बरहे बनाना अतीव आवश्यक है। यदि क्यारी बरहे बोने के बाद तुरन्त न बना दिये जायँगे तो सिंचाई का कार्य-क्रम ठीक न होगा। क्यारी-बरहे बनाने के लिये लकड़ी का एक यन्त्र होता है; जिसे कहीं २ पर फरुही कहते हैं, कहीं-कहीं बैलों से चलने वाले को "रिज़ मेकर" कहते हैं।

इस यन्त्र की सहायता से रबी के खेतों में क्यारी बरहे बनाना चाहिये। बरहा उन बड़ी नालियों को कहते हैं जिनमें होकर सिंचाई

का पानी खेत में जाता है। बरहा बनाने के लिये खेत के ढाल और चौरसपने पर विशेषरूप से विचार करना पड़ता है। बरहे का पानी अपने आस-पास दोनों ओर बनी हुई क्यारियों में पानी वितरण करता है।

जब खेत में फरुहा अथवा "रिजमेकर" द्वारा बरहे और क्यारियाँ बन जाँय तो खेतों की बुवाई का काम समाप्त समझना चाहिये। बुवाई के बाद खेतों की सिंचाई का कार्य क्रम आरम्भ होता है।
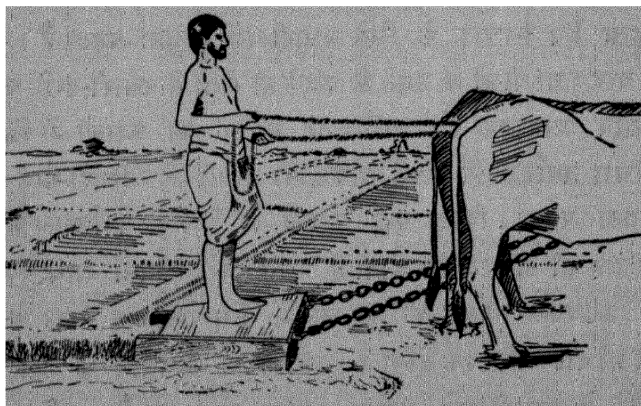
चित्र नं० २

रिजमेकर (क्यारी बरहे बनाने का यन्त्र)

कुछ फ़सलों की बुवाई जिसमें शाक-भाजी और मसाले की फ़सलों की गणना की जाती है। खेतों को तैयार करने के बाद पहिले क्यारी-बरहे बनाकर तब फ़सलों की बुवाई करते हैं। फ़सलों की बुवाई के पहिले या बाद में क्यारी बरहे बनाना आवश्यक है।

अधिकतर जहां कुओं से सिंचाई की जाती है वहां तो क्यारी और बरहे दोनों बनाये जाते हैं। किन्तु जहां नहरों से या तालाबों से दुगले द्वारा सिंचाई की जाती है वहां केवल बरहे बनाते हैं। जिस स्थान पर सिंचाई के जो साधन हैं उन स्थानों पर स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार बुवाई के बाद तुरन्त उन रीतियों से क्यारी-बरहे बनाकर सिंचाई के साधन मुहइया करना पड़ता है।

सिंचाई

बीज का वर्णन करते समय यह बात बतलाई गई है कि बीज भी अन्यान्य जीवधारियों के समान जीवधारी पदार्थ हैं। बीज को उगने के लिये नमी की आवश्यकता होती है। यह नमी बीज को जल द्वारा प्राप्त होती है। जब बीज उगकर पौदे का रूप धारण कर लेता है तो उसे बढ़ने तथा फलने फूलने के लिये पानी की आवश्यकता दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। जिस प्रकार से सभी जीवधारी पदार्थ भोजन के पश्चात जल पीते हैं, बिना जल पिये कोई भी खाद्य-पदार्थ पेट के भीतर हज़म नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार से पौदे भी कोई ख़ुराक पानी की सहायता बिना ग्रहण नहीं कर सकते।

मनुष्यों और जानवरों का सारा भोजन जल में ही पकाया जाता है। चावल, दाल, जल में ही पककर भोजन के योग्य होते हैं। पशुओं का चारा, खली, चूनी, भूसी पानी में फुलाकर तैयार किया जाता है। ठीक इसी प्रकार से खेत की भूमि में पौदों की ख़ुराक के जितने पदार्थ मौजूद रहते हैं, या खाद-पाँस डालकर पौदों के लिये खेत में ख़ुराक तैयार की जाती है। उन सभी प्रकार की ख़ुराकों को पौदा अपनी जड़ों द्वारा तभी ग्रहण कर सकता है, जब कि यह सभी प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ पानी में घुलकर

घोल रूप में इस योग्य हो जायँ कि पौदों की जड़ें उसे आसानी से ग्रहण कर सकें।

उक्त बात को समझने के लिये शक्कर के शरबत का उदाहरण इस स्थान पर बहुत ही उपयुक्त होगा। जैसे शक्कर को पानी में घोलकर शरबत बनाकर पी लेने से शक्कर का अंश शरीर में पहुँच जाता है और ख़ुराक का काम देता है। उसी प्रकार से भूमि में पाई जाने वाली पौदों की सारी ख़ुराक खेत के पानी में घुलकर पहिले शरबत बन जाती है। इस शरबत बनी हुई ख़ुराक को पौदे अपनी जड़ों द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार धीरे धीरे खींच कर पीते हैं। भूमि का सारा भोज्य-पदार्थ पानी के संयोग द्वारा पौदे के तने, शाखों और पत्तियों में पहुँच कर पौदे को स्वस्थ तथा जवान बना देता है। पौदे पानी के संयोग द्वारा जो ख़ुराक ग्रहण करते हैं, वह पौदों के सभी भागों में पहुँचकर अपना काम करती है, पानी का आवश्यक अंश जो पौदों के लिये आवश्यक होता है, वह तो पौदों में रह जाता है। शेष पानी का अंश सूर्य की गर्मी के कारण पौदों से भाप बन कर उड़ जाता है।

इस प्राकृतिक क्रिया के कारण खेत का पानी खेत की सारी ख़ुराक को शरबत बनाकर पौदों में पहुँचाता रहता है और आप इन ख़ुराक की वस्तुओं को पहुँचाकर पौदे से बाहर हो जाता है। जब पौदा खेत की ख़ुराक ग्रहण करके फलता-फूलता है और फ़सलों के रूप में हमें पैदावार देने के योग्य हो जाता है तो वह स्वयं भूमि से ख़ुराक नहीं ग्रहण करता बल्कि उसमें पानी

का जो अधिक अंश मौजूद रहता है, वह स्वयं सूर्य के ताप से भाप बनकर उड़ जाता है, जिससे पौदा सूख जाता है तो कहा जाता है कि फ़सल पक गई। पकी हुई फ़सल को गर्मी हालत में काटकर किसान उससे धन-धान्य पैदा करते हैं।

उक्त वर्णन से पाठकों को इस बात की जानकारी प्राप्त हो गई होगी कि पानी पौदों के लिये कितनी ज़रूरी चीज़ है। खेत की उत्तम जुताई, खाद-पाँस, बीज की उत्तमता, शुद्धता, निरोगिता एक तरफ़ और पानी की आवश्यकता एक तरफ़। यदि फ़सलों के पौदों के लिये पानी का पूर्ण प्रबन्ध न किया जायगा तो फ़सलों के पौदों द्वारा कभी भी उत्तम पैदावार प्राप्त न हो सकेगी। इस-लिये फ़सलों के पौदों को पानी पहुँचाने के लिये किसानों को अनेकों मार्गों की खोज करना पड़ता है।

फ़सलों के पौदों को पानी कई रीतियों से मिलता है, जिससे वे अपनी खुराक ग्रहण करते हैं। कुछ रीतियाँ तो फ़सलों के पौदों को पानी मिलने की प्राकृतिक हैं, कुछ रीतियाँ कृत्रिम हैं। प्रकृति जिन पदार्थों को उत्पन्न करती है, उन पदार्थों की रक्षा का भी प्रबन्ध करती है। यदि प्रकृति उन पदार्थों की रक्षा का प्रबन्ध न करे तो संसार के सारे पदार्थ नष्ट हो जायँ, इन पदार्थों के नष्ट होकर लोप हो जाने से सृष्टि का सारा कारोबार ही बन्द हो जाय।

प्राकृतिक रीतियों से पौदों को पानी वर्षा-काल में बादलों द्वारा प्राप्त होता है। वर्षा-काल में तो पानी पौदों को अधिकता से मिलता ही है। प्रत्युत इसके इसी वर्षाकाल का पानी भूमि पर पहाड़ों

पर तथा भूमि के भीतर अनेकों प्राकृतिक शक्तियों द्वारा संचित होकर एकत्रित रहता है। जिसे मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा कृत्रिम उपायों द्वारा प्रयत्न करके सिंचाई के रूप में पौदों के लिये खेतों में पहुँचाता है। जिसके द्वारा पौदे अपनी खुराक ग्रहण करते हैं। कभी-कभी वर्षाकाल के अतिरिक्त जाड़े तथा गर्मी की ऋतुओं में भी प्राकृतिक शक्तियों द्वारा पानी बरसता है, जिससे पौदों को पानी मिलता रहता है।

प्राकृतिक रीतियों से जो पानी खेतों की भूमि को प्राप्त होता है, वह प्राकृतिक रीतियों से ही खेतों में जमा भी रहता है जो पौदों की आवश्यकताओं के काम में आता है। उन प्राकृतिक रीतियों में से कुछ का वर्णन निम्न लिखित है।

वर्षा काल में जितना जल बादलों से गिरता है वह खरीफ में बोई जाने वाली फ़सलों के पौदों के लिये पर्याप्त होता है, इस कारण खरीफ़ की फ़सलों के पौदों की सिंचाई नहीं की जाती खरीफ़ की सारी फ़सलें बिना सींचे होती हैं। खरीफ की इन फसलों में से धान, ज्वार, बाजरा, तिल, अरहर, उरद, मूँग की काश्त बिना सिंचाई के ही वर्षाकाल में की जाती है। वर्षाकाल में जो जल प्राकृतिक रीतियों से पौदों को खेत द्वारा प्राप्त होता है वह सब का सब पौदों के काम नहीं आता। खेत की भूमि जितना पानी सोख सकती है, उतना पानी तो सोख लेती है। शेष पानी खेत की भूमि से अपने आप बह जाता है, जो नालावों से एकत्रित होकर गाँव के आस-पास जमा रहता है।

गाँवों के आस-पास बहुत सी प्राकृतिक झीलें भी होती हैं। अधिकतर वर्षाकाल का पानी खेतों से बहकर इन प्राकृतिक झीलों में एकत्रित हो जाता है।

वर्षाकाल का जो पानी गाँवों के आस-पास तालावों और झीलों में एकत्रित होने से बच जाता है, वह ग्राम के नालों द्वारा बह कर ज़िले तथा प्रान्त की छोटी-छोटी नदियों में पहुँच जाता है; यहाँ छोटी-छोटी नदियाँ उस पानी को बहाकर देश की बड़ी-बड़ी नदियों तथा समुद्र में पहुँचा देती हैं।

उक्त प्राकृतिक रीतियों से वर्षाकाल का बहुत सा जल जो खरीफ़ की फसलों में पौदों के काम नहीं आता, बह जाता है। यह बहा हुआ जल प्राकृतिक रीतियों से ग्राम, प्रान्त तथा देश के प्राकृतिक जलाशयों में एकत्रित रहता है। जिसे मनुष्य जाति अपनी बुद्धि के बल से कृत्रिम उपायों द्वारा सिंचाई के साधनों से पौदों को पहुँचाता है।

वर्षाकाल का कुछ जल जो खेत की सतह से बह नहीं सकता वह खेत की मिट्टी के कणों द्वारा रिझकर भूमि के भीतर प्रवेश करता हुआ ऐसी कड़ी चट्टानों पर जाकर एकत्रित हो जाता है जो भूमि के खोदने पर कुओं द्वारा हमें प्राप्त होता है। इस प्रकार से वर्षाकाल में जो जल मनुष्य जाति को प्राप्त होता है। यदि वह वर्षाकाल में पौदों के उपयोग में नहीं आता और अन्यान्य प्राकृतिक रीतियों से भूमि के धरातल या गर्भतल में जाकर एक-त्रित हो जाता है। तो उस जल को कृत्रिम उपायों द्वारा पौदों

के उपयोग में लाया जाता है. इसी कृत्रिम उपाय को सिंचाई कहते हैं।

कृत्रिम उपायों द्वारा सिंचाई करने के साधनों के पहिले कुछ प्राकृतिक साधन ऐसे हैं, जिनके द्वारा वर्षाकाल का पानी पौदों के उपयोग के लिये खेतों की भूमि में रोका जा सकता है, जिससे पौदे की आरम्भिक आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकती हैं। खेत की भूमि के महीन-महीन कणों में पानी को सोखने के लिये जल शोषण-शक्ति मौजूद रहती है, जो वर्षाकाल के जल को स्वयं सोखकर खेतों में संचय रखती है। खेत की भूमि में जो मिट्टी के महीन-महीन कण पाये जाते हैं, वह वर्षाकाल के पानी को अपनी आकर्षण-शक्तियों के द्वारा सोख लेते हैं। यह पानी मिट्टी के उन महीन कणों में भिनकर एक खोल रूप में हमेशा लिपटा रहता है। इसके अतिरिक्त जिन खेतों में खाद-पांस अधिक पड़ी रहती है, अथवा सनई इत्यादि जोतकर हरी खाद दी जाती है, या अन्यान्य वानस्पतिक भाग स्वयं सड़-गलकर खेत में मौजूद रहते हैं, यह सब इस वर्षाकाल के पानी को सोख लेते हैं। जो खेत की मिट्टी में सदैव मौजूद रहता है और पौदों के काम आता है।

उक्त रीतियों से जो पानी खेत के धरातल में नहीं रुक सकता वह पानी भूमि की आकर्षण-शक्ति के कारण भूमि के महीन कणों द्वारा रिसता हुआ भूमि के भीतर घुसता चला जाता है। यही पानी कड़ी चट्टानों पर रुककर कुओं के द्वारा हमें पीने और सींचने के लिये मिलता है।

वर्षाकाल का जो पानी आकर्षण-शक्तियों द्वारा भूमि के भीतर जाकर कड़ी चट्टानों पर रुकता है, वह पानी भूमि के ऊपर ही दबाव के कारण उस चट्टान पर एकत्रित होकर जलाशय का रूप भूमि के भीतर नहीं बना सकता। प्रत्युत इसके वह जल पुनः ऊपर के या आस-पास के उन कणों में रिझता हुआ जहाँ उसके फैलने की गुंजाइश होती है, फैलकर सोते अथवा चश्मे का रूप धारण करके पुनः ऊपर आ जाता है। यह बात पहाड़ी सोतों या चश्मों में भली प्रकार से देखी जा सकती है। या मैदानी हिस्सों में कुओं को खोदने पर जब पानी मिलता है तो उसके चारों तरफ़ से वह सोते या चश्मे अपने आप आकर कूप में पानी फेंकने लगते हैं। इस आकर्षण-शक्ति के कारण वर्षाकाल का पानी भूमि के भीतर भ्रमण करता रहता है जो खेत की मिट्टी को हमेशा नम रखता है।

इस आकर्षण-शक्ति द्वारा जो जल खेत की मिट्टी के चारों ओर रहता है, वह सूर्य की गर्मी के कारण ऋतुओं के अनुसार सदैव-घटता बढ़ता रहता है, जिससे खेतों में बोये जाने वाले पौदों को आरम्भिकावस्था में उगने और बढ़ने के लिये इससे नमी प्राप्त होती रहती हैं। इसी जल को अधिक मात्रा में रोकने के लिये खेतों की गहरी जुताई की जाती है तथा फ़सलों को बोने के बाद फ़सलों की निकाई-गुड़ाई करके खेत के धरातल को भुरभुरा रखते है जिससे कि प्राकृतिक-आकर्षण-शक्तियों द्वारा जो जल भूमि के गर्भतल से आकर खेतों के धरातल में एकत्रित हो वह सूर्य की गर्मी के कारण भाप बन कर उड़ न जाय।

खेत की भूमि के कण जिस प्रकार से आकर्षण-शक्ति द्वारा भूमि के भीतरी कणों से नमी खींचते है, उसी प्रकार से अपनी साधारण शोषण-शक्ति द्वारा वायुमण्डल में जो नमी मौजूद रहती है, उसमें से भी जल का अंश खींच-खींचकर पौदों के लिये एकत्रित करते रहते हैं। इस साधारण-शक्ति द्वारा जो जल भूमि के कणों में अपने आप वायु द्वारा आकर एकत्रित होता है, वह किसी प्रकार से अलग नहीं किया जा सकता।

गर्मी के दिनों में सूर्य की गर्मी से यह जल अवश्य भूमि के कणों से भाप बनकर उड़ जाता है, किन्तु रात में जब वायुमंडल नम तथा तर रहता है तो नमी अपने आप भूमि के कणों में एकत्रित हो जाती है। इस प्रकार से इस साधारण शोषण-शक्ति द्वारा खेत की मिट्टी के कणों में पानी अपने आप एकत्रित होकर पौदों की ख़ूराक को तैयार करता रहता है।

इस साधारण शोषण-शक्ति के अतिरिक्त वायुमंडल से नमी खींचने के लिये खेतों में ऐसे पदार्थों का होना भी निहायत ज़रूरी है, जो अपनी विशेषताओं के कारण वायुमंडल से नमी खींचा करें। इस रीति से जो नमी वायुमण्डल से खेत की मिट्टी के तत्वों द्वारा एकत्रित होती रहती है, वह मुख्य शोषण-शक्तियों द्वारा हुआ करती है। जैसे वर्षाकाल में नमक में वायुमण्डल से पानी अपने आप प्रवेश करके उसे घुला कर पानी बना देता है। इसी प्रकार से लोहे के पदार्थों में वायुमण्डल की नमी के कारण मुरचा लगकर वायुमण्डल की नमी लोहे को घुलाकर पानी बना देती है। यदि

इस प्रकार के पदार्थ खेत की मिट्टी में आवश्यक मात्रा में एकत्रित रहें, तो खेत की मिट्टी को वायुमण्डल से भी जल का पर्याप्त भाग मिलता रहे, जो पौदों की ख़ुराक को घुलाने का काम दे सकता है। इस प्रकार से वायुमण्डल द्वारा खेत के धरातल को सदैव गर्मी-सर्दी के परिवर्तन से जल मिलता रहता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जाड़े की ऋतुओं में रबी की फ़सलों में ओस के रूप में देखा जा सकता है। जो चतुर किसान हैं, वह अपने खेत के धरातल को जोतकर तथा निरा-गोड़ कर इस प्रकार से भुरभुरा रखते हैं कि खेत की मिट्टी में हरेक प्राकृतिक शक्तियां द्वारा जल का अंश एकत्रित होता रहे, जिससे खेत की मिट्टी में पाई जाने वाली ख़ुराक घुल-घुलकर पौदों को मिलती रहे।

उक्त प्राकृतिक साधनों द्वारा जब भूमि का तथा वायुमण्डल का सारा जलाँश पौदों के काम आ जाता है और पौदा निरन्तर बढ़ने लगता है तो उसकी जल सम्बन्धी आवश्यकताएँ निरन्तर बढ़ती जाती हैं। इस कारण खेत की मिट्टी को अधिक नम और तर करने के लिये खेतों को कृत्रिम उपायों द्वारा सिंचाई करके पानी पहुँचाना पड़ता है। कहीं-कहीं पर असींच फ़सलें भी होती हैं, जिनकी पैदावार बहुत ही कम होती है, जिससे कृषक जनता आर्थिक लाभ नहीं उठा सकती।

आर्थिक लाभ उठाने के लिये तथा फ़सलों से अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिये किसानों को कृत्रिम उपायों द्वारा फ़सलों की सिंचाई करना बहुत ही आवश्यक है। हरेक स्थान में सिंचाई

के साधन भिन्न-भिन्न रूप में हैं। सिंचाई करने के लिये जल--गांव के कुओं, तालाबों, झीलों, नालों तथा देश की नदियों से नहरों के रूप में प्राप्त होता है।

वर्षाकाल का जो जल भूमि के भीतर बाहर बह कर या रिसकर एकत्रित रहता है। वही जल जब पौधों को आवश्यकता होती है तो कृत्रिम साधनों द्वारा सिंचाई के रूप में पहुँचाया जाता है। हर स्थानों में सिंचाई के साधन भिन्न २ हैं। जहां पर फसलों की सिंचाई के जो साधन आसानी से काम में लाये जा सकें अथवा जिन साधनों में परिश्रम और मजदूरी में कमी हो; उन स्थानों में उन्हीं साधनों को काम में लाना बुद्धिमता है। फसलों की सिंचाई उपज की दृष्टि से करना बहुत ही आवश्यक है, किन्तु सिंचाई के साधनों पर इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि सिंचाई में जो खर्च पड़े वह फसल की पैदावार से वसूल हो जाय; साथ ही साथ उपज से लाभ भी हो जिससे किसानों की आर्थिकावस्था सुधरे।

सिंचाई के उन साधनों को कभी भी भूलकर उपयोग में नहीं लाना चाहिये, जिनके द्वारा व्यय अधिक हो और लाभ कम हो। खेतों में जिन-जिन साधनों से सिंचाई की जाती है। उन-उन साधनों से निम्नलिखित दो मार्गों द्वारा खेत सींचे जाते हैं।

(१) तोड़ की सिंचाई—वह सिंचाई है, जब खेत का धरातल उस जलाशय से नीचे रहता है, जिससे कि खेत की सिंचाई की जाती है। इस मार्ग से पानी खेत में सीधे अपने आप नालियों द्वारा

पहुँच जाता है, जिससे खेतों की सिंचाई अपने आप आसानी से हो जाती है। इस सिंचाई को तोड़ की सिंचाई के नाम से पुकारा जाता है।

(२) डाल की सिंचाई वह सिंचाई कहलाती है, जब खेत का धरातल सिंचाई के जलाशय से ऊँचा होता है। ऐसी अवस्था में जलाशय से पानी यन्त्रों द्वारा उठाकर खेत में पहुँचाया जाता है; तब फ़सलों की सिंचाई होती है। इस रीति की सिंचाई को डाल की सिंचाई कहते हैं।

उक्त दोनों रीतियों से सिंचाई हरेक साधनों से की जाती है। इन साधनों से सिंचाई करने के लिये जलाशयों में जो यन्त्र प्राचीन काल से व्यवहृत होते आये हैं उनका तथा उन यन्त्रों का भी वर्णन जो इस वैज्ञानिक-युग में कृषि की उन्नति की दृष्टि से आविष्कृत किये गये हैं: पाठकों की जानकारी के लिये किया जाता है। जहां पर जो साधन उपयुक्त हों वहाँ पर वह साधन तथा कृषि-यन्त्र सिंचाई के लिये आर्थिक-दृष्टि से उपयोग किये जा सकते हैं।

फ़सलों की बुवाई और क्यारी-वरहे बनाने के पश्चात् फ़सलों की सिंचाई की जाती है। खरीफ़ की फ़सलें जो वर्षा-काल में बोई जाती हैं, उन्हें भी यदि उनमें से कुछ जाड़े की ऋतु में तैयार होती हैं तो उनको तथा रबी की तमाम फ़सलों की—शाक-भाजी-मसाले की फ़सलों की तथा गन्ने इत्यादि धन दायक फ़सलों की सिंचाई करना अतीव आवश्यक है।

कुएँ द्वारा सिंचाई के साधन

ग्रामों में अधिकतर कुएँ खोदकर कुओं द्वारा खेतों की सिंचाई करने का रवाज़ अधिकतर प्रचलित है। कुएँ द्वारा सिंचाई करने के कई एक साधन हैं। उन साधनों में से सबसे पहिला साधन उन किसानों के लिये जो थोड़े क्षेत्रफल में कृषि करते हैं और वहाँ पर सिंचाई के कोई अन्यान्य साधन मौजूद नहीं हैं, जिसके द्वारा सिंचाई की जा सके— तो मजबूरी हालत में बेचारा किसान ढेंकली द्वारा खेतों की सिंचाई करता है।

ढेकली द्वारा खेतों की सिंचाई

उन ग्रामों में जहाँ भूमि के भीतर बालू की तहें अधिक गहराई तक मिलती हैं। जिससे किसान प्राचीन रीतियों से स्थायी कुएँ नहीं बना सकते, न पैसा खर्च करके नवीन साधनों द्वारा तह तोड़ कुएँ जिसे 'ट्यूबवेल' के नाम से पुकारा जाता है, बनवा सकते हैं; ऐसे ग्रामों में प्राचीन काल से ही किसान लोग हर साल अपने खेतों में अपने परिश्रम से एक छोटी सी कुआं खोद लेते हैं। यह कुआँ बालू की तहों में कहीं पर थोड़ा सा पानी दस-बारह फीट नीचे भूमि के भीतर दे देती है। इस कुएँ में एक लम्बी लकड़ी गाड़कर जिसका पिछला भाग मोटा तथा वज़नी होता है; उसे छोड़ देते हैं। इसके दूसरे भाग में रस्सी बांधकर नीचे मिट्टी का घड़ा या लोहे की बाल्टी बाँध देते हैं। एक आदमी हाथ से रस्सी को खींच-खींच कर कुएँ में डालता है। जब घड़ा

कुएँ मे जाकर पानी से भर जाता है तो वहाँ आदमी उस रस्सी को हाथ से ऊपर खींचता है; लकड़ी का दूसरा सिरा वज़नी होने के कारण भूमि की ओर गिरता जाता है. आदमी के सहारे घड़ा पानी से भरकर ऊपर आ जाता है, जिसे आदमी पास में ही किसी क्यारी मे उड़ेल देता है। उस पानी से बरहों और क्यारियों द्वारा धीरे-धीरे खेतों की सिंचाई होती है। इस रीति से एक आदमी रोज़ाना एक बिस्वा से अधिक खेत नहीं सींच सकता। ढेकली द्वारा खेतों की सिंचाई केवल बीघे दो बीघे आदमी बड़ी कठिनता से कर सकता है। इस रीति से कुआँ भी हर साल बनाना पड़ता है। यह बहुत ही पुरानी प्रथा कुओं द्वारा सिंचाई करने की है। जहां पर यह प्रथा अभी तक प्रचलित हो वहाँ पर किसानों को सहयोग-समिति स्थापित करके कृषि-विभाग द्वारा बोरिङ्ग करवा कर स्थायी कुएँ बनाकर नवीन रीतियों द्वारा सिंचाई करना चाहिये।

रहट द्वारा सिंचाई

कुएँ से सिंचाई करने का दूसरा साधन रहट है। रहट लोहे का एक यन्त्र है, जो बहुत से स्थानों में प्रचलित है। यह यन्त्र सिंचाई का बहुत पुराना यन्त्र है। वर्तमान काल में इसमें अनेकों प्रकार के सुधार हो गए हैं; जिनके द्वारा सिंचाई करने से लाभ होता है। जिन कुओं में पानी दस फ़ीट के नीचे मिल जाता है, उन कुओं में रहट द्वारा सिंचाई करने से लाभ है।

दस फ़ीट से लेकर तीस फ़ीट के गहरे कुओं में रहट द्वारा

सिंचाई की जा सकती है। इससे अधिक गहराई में जिन कुओं में पानी हो—उनमें रहट द्वारा सिंचाई करने में लाभ नहीं हो सकता। कुओं में जो रहट लगाये जांय उनके लगाने के पहिले कृषि-विभाग के अधिकारियों की राय ले लेना ज़रूरी है। रहट दो प्रकार के आजकल प्रचलित हैं। एक प्रकार का रहट तो कुएं में फिट करने के बाद एक राड द्वारा उसका पहिया कुएँ से कुछ दूरी पर पहिये से फिट कर दिया जाता है; जिसे एक आदमी और एक जोड़ी बैल या भैंसा आसानी से चला सकता है; अब तो कहीं-कहीं पर रहट को चलाने के लिये ऊँट भी बैलों की तरह काम में लाये जाते हैं।

यदि कुएँ की गहराई खेत के धरातल से जहां पर पानी मौजूद है, दस फीट है, तो प्रति घंटा लगभग सात हज़ार गैलन पानी रहट द्वारा खींचा जा सकता है। यदि रहट इस रीति से बराबर दस घंटा प्रतिदिन चलता रहे तो दिन भर में लगभग एक एकड़ के सिंचाई आसानी से हो सकती है।

यदि कुएँ के पानी की गहराई बढ़ती जायगी तो रहट में पानी उठाने के लिये जो बाल्टियाँ लगती हैं, उनकी संख्या भी बढ़ती जायगी इसके अतिरिक्त पानी की मात्रा भी कम होती जायगी। पचीस तीस फीट की गहराई तक पहुँचते-पहुँचते इस रहट द्वारा प्रति घंटा ढाई हज़ार से लेकर -तीन हज़ार गैलन तक पानी प्रति घंटा निकाला जा सकता है, जिससे लगभग आधा एकड़ तक दिन भर में सींचा जा सकता है।

उक्त रीति से जो खेत सींचे जायगे, उन खेतों में पानी खेत के धरातल में ढाई इञ्च से लेकर ३ इञ्च तक रिस जायगा। जो पौदों के लिये पर्याप्त होगा। सिंचाई द्वारा इस पानी की वही मात्रा होगी जो वर्षाकाल में बरसने से जितना पानी ढाई से तीन इञ्च तक खेतों मे रिसकर जमा हो जाता है। एक बार इतनी गहराई तक सिंचाई कर देने से लगभग साठ-सत्तर हज़ार गैलन पानी प्रति एकड़ सिंचाई से खेतो में पहुँच जाता है, जो फ़सलों के लिये पर्याप्त है। एक गैलन पानी वज़न में लगभग पाँच सेर के होता है। ऋतुओं के अनुसार सिंचाई में पानी की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। ग्रीष्मकाल में सिंचाई द्वारा खेत की मिट्टी अधिक पानी सोखती है, जाड़े मे सिंचाई द्वारा खेत की मिट्टी में पानी कम ख़र्च होता है।

जिन कुओं में रहट लगाया जाता है, उसमें केवल रहट द्वारा ही सिंचाई हो सकती है। उस कुएँ में चरसे द्वारा सिंचाई करना असंभव हो जाता है। इसलिये जिन कुओं में सिंचाई के लिये रहट लगाना हो किसी प्रसिद्ध तथा विश्वनीय कम्पनी का रहट कृषि-विभाग की राय से मँगाकर लगाना चाहिये।

रहट एक स्थायी रूप से सिंचाई का यन्त्र है जो लगभग १५०) से लेकर २००) तक में ख़रीद कर कुएँ में फ़िट किया जा सकता है।

रहट की त्रुटियों को दूर करके इस प्रान्त के कृषि-विभाग के ज्वाइण्ट डाइरेक्टर श्री सी० मायादास साहब ने रहट में सुधार

किया है जो उनके नाम से प्रसिद्ध है। उसे तथा अन्यान्य कम्पनियों के बने हुये रहट का व्यवहार सिंचाई के लिये किया जा सकता है। रहट को इस्तेमाल करने के लिये उसका तरीका भी सीख लेना चाहिये। रहट के पुर्ज़ों में तेल लगाते रहना चाहिये। जो आसानी से चलता रहे। जो बाल्टियाँ खराब हो जायं, उन्हें बदल कर नई बाल्टियां लगाकर रहट का व्यवहार निरन्तर सिंचाई के लिये किया जा सकता है।

चरसे द्वारा सिंचाई

सिंचाई के लिये अत्यन्त प्राचीन काल से ही गांवों में कुएँ खोदे जाते थे। इन कुओं द्वारा आपस के सहयोग से किसान लोग अपने खेतों की सिंचाई करते थे। सिंचाई के लिये गांव का कोई धनी मानी पुरुष कृषि-क्षेत्रों के बीच में जिसे देहातों में 'सेवार' कहते हैं, कूप खुदवाता था। कूप खुदवाने में गांव के सभी व्यक्ति सहयोग करते थे। जिन कुओं में भूमि के गर्भतल में अच्छा सोता मिल जाता था; उनमें आठ चरसे चलते थे। आज भी देहातों में भ्रमण करने से ऐसे बहुत से कुएँ मिलेंगे जिनमें आठ चरसों द्वारा पानी निकाल कर सिंचाई की जाती है।

कुएँ के चारों ओर पौदर बनाई जाती है। पौदर का वह भाग जो कुएँ की जगत के पास होता है, ऊंचा रहता है। उसके बाद का भाग जिस पर बैल चलते हैं, ढालू बनाया जाता है, जिससे बैल और आदमियों को चलने में कष्ट न हो। इस पौदर पर कुएँ की जगत

में मिली हुई जो खूँटी या खम्भे रहते हैं उस पर लकड़ी रखकर घुरई रखते हैं । घुरई बाँस की बनाई जाती है। कहीं-कहीं लकड़ी की भी घुरई बनती है ।

एक पौदर पर दो पुरवट के चलाने का प्रबन्ध रहता है। घुरई के ऊपर बबूल की बनी हुई गड़ारी रखते हैं। इस गड़ारी में दोनों ओर छेद होता है, जिसमें लोहे की साम लगी रहती हैं। गड़ारी के दोनों छेदों में बबूल का 'गड़ेर' छोड़कर तब इसको चलाने के व्यवहार में लाते हैं ।

इस घुरई के ऊपर जो गड़ारी रक्खी जाती है, उस पर सनई के रेशे के बने हुये रस्से जिसे कहीं-कहीं नार भी कहते हैं, लटकाया जाता है। वह सिरा जो गड़ारी से होकर नार का कूप में लटकता है; उसमें चमड़े का चरसा जिसे मोट भी कहते हैं, नार के 'पनवास' द्वारा मोट में बांध दिया जाता है। नार का दूसरा सिरा पानी की गहराई से कुछ लम्बा छोड़कर जुए या माची में बाँध कर बैल में नाथ दिया जाता है ।

चरसा गांवों में मरे हुये पशुओं के चाम को सिझा कर बनाते हैं चरसा बैलों की ताक़त के अनुसार छोटा-बड़ा बनाया जाता है और गोलाई में काटा जाता है। जिसमें चमड़े के छोटे-छोटे सोलह टुकड़े किनारों पर सीकर जिसे 'दियाला' कहते हैं, तब चरसे तैयार किये जाते हैं ।

इन सोलहों दियालों में छेद करके 'सिंहोर' की लकड़ी जो लचीली होती है, उसका 'घोरईमेड़रा' बनाकर चरसे को सनई

के रेशे की पतली रस्सी से गुढ़ते हैं। इस प्रकार से चरसा तैयार हो जाता है। उक्त कार्यों के करने के पहिले चरसे में सरसों का तेल पर्याप्त मात्रा में लगभग दो सेर तक सुखाते हैं, जिससे चमड़ा टिकाऊ हो जाता है।

जब नार, मोट, धुरई, गड़ारी सब सामान तैयार हो जाता है तो कुएं पर आठों पुरवट चलने लगते हैं। आपस के सहयोग से इन आठों पुरवट का पानी एक किसान अपने खेत में ले जाता है। शेष सात किसान उसके खेत में 'हूंड' करते हैं। जब उसका खेत दो-तीन दिन में सिंच जाता है, तो दूसरा किसान पानी पाता है। इस तरह से बारी-बारी से सभी किसान पुरवट द्वारा सिंचाई करते हैं।

पुरवट के सम्बन्ध में विचार करने से पता चलता है कि जिस सहयोग का प्रचार आजकल जोरों से किया जा रहा है। उसका बीजारोपण हमारे देश में प्राचीन काल में ही हो चुका था, सिंचाई के मामले में सहयोग द्वारा ही किसानों के खेत चरसे द्वारा सींचे जाते थे। यदि सिंचाई में आपस में सहयोग की प्रथा का प्रचार न होता तो एक किसान एक पुरवट से अपने खेतों के सींचने में बहुत दिन लगा देता।

पुरवट में दो चरसों के बीच में चरसों को छोड़ने के लिये एक छिदवा की ज़रूरत होती है। चरसों को चलाने के लिये प्रत्येक पौदर पर दो 'हँकवा' रहते हैं। इस प्रकार से एक कुएं पर ८ हँकवा ४ छिदवा अर्थात १२ आदमी पुरवट को चलाने में

काम करते हैं। खेत में जो आदमी पानी को बरहों द्वारा क्यारियों में सींचता है उसे 'बरवाह' कहते हैं। जिन नालियों द्वारा पानी खेत में जाता है। उसे देखने के लिये भी एक आदमी की आवश्यकता होती है, जिससे पानी कट कर बह न जाय।

लगभग १५-१६ पुरवट से एक एकड़ खेत की सिंचाई ढाई इञ्च से लेकर तीन इञ्च तक की जाती है। एक पुरवट से लगभग चार हज़ार गैलन पानी प्रति दिन चरसों द्वारा निकाला जाता है एक पुरवट की मज़दूरी चन्द्रबटा-डिमॉन्स्ट्रेशन फार्म, दादूपुर पर ॥) प्रति-दिन उन किसानों को दी जाती है, जो अपने पुरवट से प्रातः-काल ६ बजे से शाम को ५ बजे तक पुरवट चलाते हैं। उक्त फार्म पर अनुभव करने से पता चला है कि पुरवट द्वारा सिंचाई करने में सात-आठ रुपया प्रति एकड़ एक बार की सिंचाई में ख़र्च पड़ता है। विशेषता इसमें यही है कि पुरवट द्वारा सिंचाई करने में गांव के मज़दूर, घर के जानवर, सभी लोग काम करते हैं। इस काम में जो पैसा ख़र्च होता है, वह ग्राम के ही लोगों की जेब में जाता है, जिससे उनकी बेकारी दूर होती है, इस प्रथा से गांवों में ही मज़दूरों को काम मिल जाता है। इसलिये इस प्रथा का रवाज़ अभी तक देहातों में प्रचलित है।

कुछ स्थानों में चरसे में सुधार किया गया है, जिसमें नीचे भाग में चरसे में चमड़े की एक नली लगाई जाती है, जिसे सूंडिया चरसा कहते हैं। इस चरसे में एक पतली रस्सी लगी रहती है जो जगत से मिली हुई एक गड़ारी से जिसका सम्बन्ध हँकवा

से रहता है, रस्से के साथ-साथ बँधी रहती है। जब चरसा कूप से निकल कर जगत पर आ जाता है तो चरसे का हँकवा इस पतली रस्सी को खींच कर कुछ ढीला कर देता है, जिससे चरसे का पानी कुएँ के ओड़ान में आप से आप गिर जाता है। सूँडिया चरसे में छिद्वा की ज़रूरत नहीं होती।

कुछ स्थानों में पुरवट में बजाय दो बैल के एक मज़बूत नर भैंसा द्वारा भी पुरवट चलाते हैं, जिस प्रकार से बैलगाड़ी में आगे वाला बैल दोनों तरफ़ से रस्सी लगाकर जोड़ते हैं। उसी प्रकार से भैंसे को भी पुरवट में अकेला जोड़कर चलाते हैं। इस प्रकार से सोलह बैलों के बजाय आठ नर भैंसों से ही आठ पुरवट चलाया जाता है। इन तरीक़ों से चरसे की सिंचाईमें मज़दूरी की बचत होती है।

घर्रा

चरसे को चलाने के लिये कहीं-कहीं पर मज़दूर भी लगाये जाते हैं। एक चरसे को खींचने के लिये कम से कम छः और अधिक से अधिक सात आदमी लगाये जाते हैं। यह मज़दूर घर्रे को दौड़-दौड़कर चलाते हैं। इस रीति को देहातों में घर्रा कहते हैं। एक घर्रे से दो पुरवट का पानी निकाला जाता है। एक घर्रे के चलाने में ।।।) से लेकर ।।।=) तक खर्च पड़ता है। अधिकतर वह लोग घर्रे से सिंचाई करते हैं, जिन्हें सिंचाई की जल्द ज़रूरत रहती है। देर में सिंचाई करने से फ़सल ख़राब हो जाने का अंदेशा रहता है। इन लोगों को छोड़कर जहाँ मज़दूर प्रचुरता

से कम मज़दूरी पर मिलते हैं. वह लोग भी पर्रो द्वारा चरसे से सिंचाई करते हैं।

जिन कुओं में आठ पुरवट का पानी नहीं रहता, उन कुओं में तीन पौदर बनाकर छः पुरवट द्वारा पानी निकालते हैं। जिन कुओं में पानी और कम होता है। उसमें दो पौदर बनाकर चार पुरवट चलाते हैं। इसी प्रकार छोटी कुइयों में एक पौदर बनाकर दो पुरवट या एक पुरवट से भी खेतों की सिंचाई देहातों में किसान लोग करते हैं।

बोरिङ्ग

वर्तमान काल में जब से प्रान्तीय सरकारों ने ग्राम-सुधार का काम अपने हाथ में लिया है; तब से ग्रामों में जिन कुओं में चरसे द्वारा सिंचाई की जाती है, उनकी बोरिंग का भी प्रबन्ध कर दिया गया है। इस काम में ज़िले के ग्राम-सुधार-संघ द्वारा प्रत्येक कुआं की बोरिंग में जितना ख़र्च पड़ता है, उसका तिहाई सरकारी रुपये से दिया जाता है। शेष दो हिस्सा गांव वालों को देना पड़ता है। अधिक से अधिक चालीस रुपये तक ग्राम-सुधार-संघ द्वारा हरेक कुएँ की बोरिंग में सहायता मिल सकती है। जिन कुओं में चरसा चलता हो यदि उनमें पानी की कमी हो तो ग्राम-सुधार-संघ की सहायता से ऐसे कुओं की बोरिंग कराना अतीव आवश्यक है। जिससे कुएँ में पर्याप्त पानी चरसों के चलाने के लिये मिल सके।
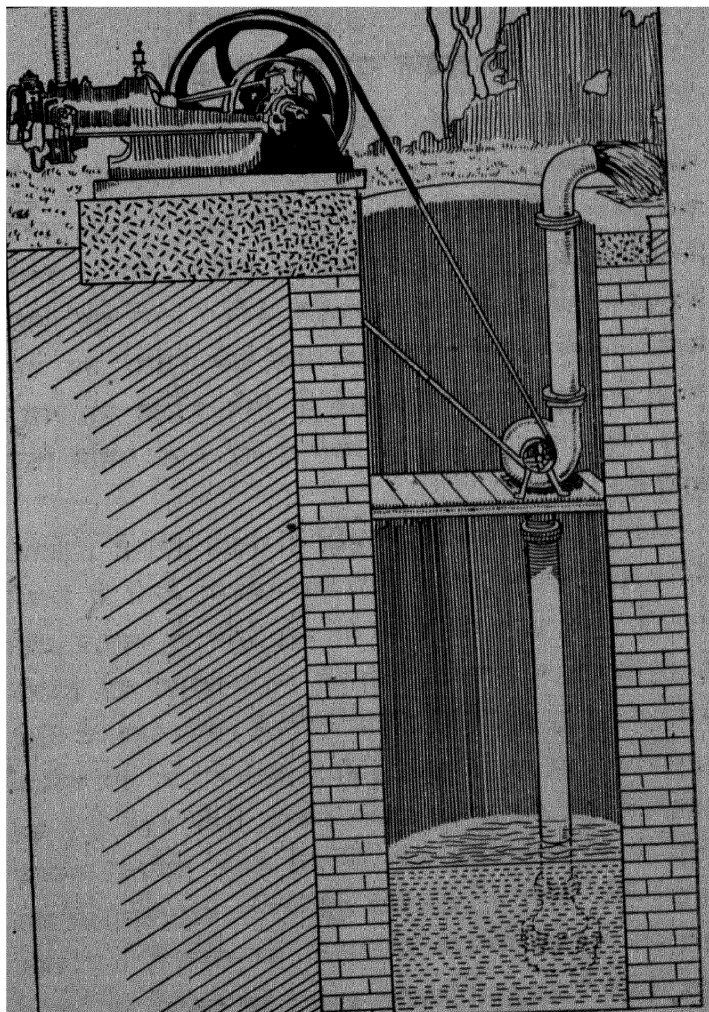
चित्र नं० ३ ट्यूबवेल या पाताल कुआँ

ट्यूबवेल या पाताल कुएँ

वर्तमान काल में कृषि की उन्नति के लिये जिस प्रकार से अन्यान्य विषयों में वैज्ञानिक रीतियों से उन्नति की गई है। उसी प्रकार से सिंचाई के लिये पाताल तोड़ कुएँ की भी तरकीबें निकाली गई हैं। भूमि के भीतर वैज्ञानिक यन्त्रों से बोरिंग अर्थात छेद करके लोहे के नल गलाये जाते हैं। बोरिंग द्वारा कुएँ बहुत गहराई तक खोदे जाते हैं। भूमि के भीतर बोरिंग द्वारा जब ऐसा चश्मा मिल जाता है कि वह सिंचाई के लिये इंजिन या विद्युत द्वारा पर्याप्त जल दे सके तो बोरिंग का काम समाप्त किया जाता है।

बोरिंग करते समय जो नल भूमि में गलाये जाते हैं। उनकी परिधि चार इञ्च---६ इञ्च जैसी आवश्यकता होती है रक्खी जाती है। इसी प्रकार से लोहे के जो नल भूमि में गलाये जाते हैं, वह भी मोटे और जालीदार होते हैं। कृषि-विभाग का इञ्जीनियरिंग विभाग ट्यूब वेल का काम करता है। इस कार्य के लिये सरकारी तौर पर नक़दी सहायता भी दी जाती है। जो लोग अधिक क्षेत्रफल में फार्म बनाकर वा चकबन्दी करके खेती करते हैं। उन लोगों के लिये ट्यूबवेल द्वारा सिंचाई करना अधिक लाभप्रद होगा। ऐसे लोगों के अतिरिक्त छोटे-छोटे काश्तकार सहयोग द्वारा भी ट्यूबवेल बनवाने का प्रयत्न कर सकते हैं। ट्यूबवेल द्वारा कुओं से जो पानी निकाला जाता। वह इञ्जन या विद्युत द्वारा ही निकाला जा सकता है। ट्यूब वेल बनवाने में कम से कम
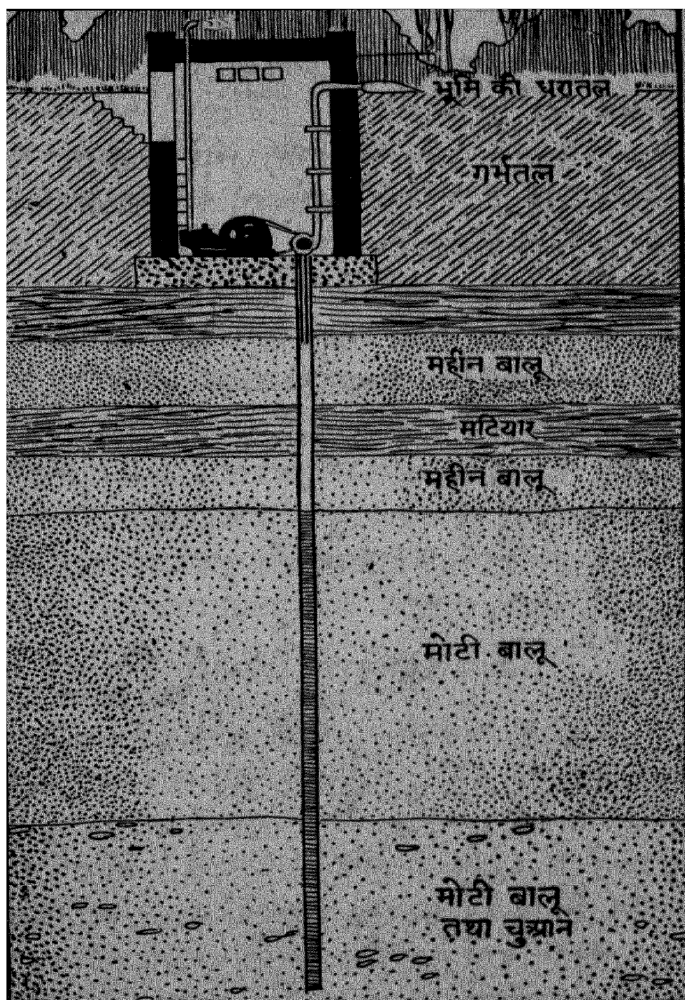
चित्र नं० ४ कुएँ में बोरिङ्ग करना

सात-आठ हज़ार रुपया ख़र्च होते हैं। जिससे ५० एकड़ के फार्म की सिंचाई की जा सकती है। ऐसे कुएँ कृषि-विभाग की राय लेकर ही बनवाना सदैव उपयुक्त होगा। ऐसे कुओं के बनवाने के लिये प्रान्तीय-कृषि विभाग से लिखापढ़ी करके सभी बातें तय करने से विशेष लाभ होता है।

कुएँ द्वारा जिन-जिन रीतियों से सिंचाई की जा सकती है। उसके अतिरिक्त वर्तमान काल में जो उन्नति प्राप्त साधन वैज्ञानिक रीतियों से एकत्रित किए गए हैं, उनका वर्णन किया जा चुका। इस सम्बन्ध में इतना और बतला देना आवश्यक है कि कुएँ का जल भूमि के भीतर अनेकों चट्टानों को पार करके एकत्रित होता है। इस कारण इस जल में पौदों की आवश्यक ख़ुराक घुली रहती है। जिसे खाकर पौदे अधिक पैदावार देते हैं। इसलिए कूप जल द्वारा सिंचाई करना लाभप्रद है।

तालावों द्वारा सिंचाई

कुएँ के अतिरिक्त गांवों में जिस प्रकार से प्राचीन काल में अन्यान्य काम धार्मिक दृष्टि से किये जाते थे; उसी प्रकार से तालाब भी खुदवाये जाते थे। इन तालावों में पशुओं के पानी पीने का भी प्रबन्ध रहता था। गांव के लोग इन तालावों से सिंचाई भी करते थे। अधिकतर गांव का ज़मींदार किसानों को ऐसे तालावों या बांध के बनाने में मदद करता था; जिनसे फ़सलों की सिंचाई की जाती थी। ऐसे तालाब या बाँध जिसमें वर्षा काल में पानी

जमा किया जाता था, उससे जाड़े में रबी की फसलें सींची जाती थीं।

अभाग्यवश मौजूदा जमाने में समय के उलट-फेर से इन तालाबों तथा बांधों की मरम्मत नहीं हुई जिससे बहुत से तालाब तथा बांध अब इस योग्य नहीं रह गये। जिनके द्वारा सिंचाई उतने क्षेत्रफल में की जा सके जितने क्षेत्रफल में पहिले की जाती थी। ग्रामसुधार के इस जमाने में ग्राम के तालाबों और बाँधों के सुधारने की ओर भी लोगों का ध्यान गया है। अब बहुत से स्थानों में सिंचाई के तालाबों और बांधों की मरम्मत होने लगी है।

कुछ समय पहिले गावों में जमींदारों ने लोभवश ऐसा काम आरंभ कर दिया था कि गाव के तालाब तथा पड़ती जुत कर खेती करने के लिये मजरुआ बना लिये गये। कहीं-कहीं तो तालाबों तथा बांधों पर बाग भी लगा लिये गये। अधिकतर बांधों तथा तालाबों का वह भाग जिसमें सिंचाई का पानी जमा रहता था। धान की खेती के काम में आने लगा है। किन्तु जिन स्थानों में अभी तालाब और बांध हैं उनसे सिंचाई का काम अब भी पर्याप्त क्षेत्रफल में होता है।

गांव के तालाबों या बांधों का धरातल खेत से नीचा होता है। इसलिये इन तालाबों तथा बांधों में पानी उठाने के लिये कुछ यन्त्र बनाये जाते हैं। जिनसे पानी उठाकर ऊपर लाया जाता है। तब खेतों की सिंचाई की जाती है। तालाबों और बांधों में जिन

यन्त्रों से पानी उठाया जाता है, उनका वर्णन जानना अतीव आवश्यक है। कुछ यन्त्र तो ऐसे हैं जो प्राचीन काल से ही हमारे देश में इस्तेमाल होते रहे हैं। कुछ यन्त्र आजकल के ज़माने में कृषि-वैज्ञानिकों द्वारा बनाकर जनता में प्रचलित किये गये हैं।

दुगला या बेड़ी द्वारा सिंचाई

तालावों या बांधों में जिनमें वर्षाकाल में पानी इकट्ठा हो जाता है, उसे जाड़े में दुगला से उठाकर रबी के खेतों की सिंचाई करते हैं। दुगला बाँस के पतले-पतले टुकड़ों द्वारा ग्रामों में 'धरिकार' जाति के लोगों द्वारा तैयार किया जाता है। डेला, भंगी, धरिकार, जाति के लोग देहातों में बाँस से अनेकों चीजें बनाते हैं जो किसानों के उपयोग में आती हैं। दुगला भी बाँस द्वारा बनाया जाता है। एक दुगले में कम से कम एक गैलन और अधिक से अधिक दो गैलन पानी एक बार में उठाया जाता है।

बाँस के इन दुगलों में सनई या पटसन के रेशे की पतली पतली किन्तु मज़बूत रस्सियाँ बाँधने के लिये बटी जाती हैं। इन रस्सियों को दुगले की गोलाई में दोनों ओर बाँधते हैं। एक तरफ़ बाँधने में रस्सी में दो भाग नीचे की ओर करके दो छेदों में बांध देते हैं। इस प्रकार से दुगले में दोनों ओर दो रस्सियाँ आठ दस फ़ीट लम्बाई की लगा देते हैं। इन रस्सियों के सिरों पर हाथ से पकड़ने के लिये लकड़ी की एक मज़बूत खूँटी लगाते हैं

जिसे पकड़कर मज़दूर पानी को दुगलों में भरकर तालाब से निकालता है।

तालाब के जिस किनारे से पानी निकाला जाता है। वहां पर दोनों ओर मिट्टी का ऊँचा चौतरा बना लेते हैं। इस चौतरे पर दोनों ओर खड़े होकर एक दुगले को दो आदमी चलाते हैं। एक दुगला जब दो आदमी से चलाया जाता है तो उसे 'दोकड़ी' कहते हैं। उसी के पास यदि उसी रीति से दो दुगला चार आदमी चलाते हैं तो उसे 'चौकड़ी' कहते हैं। यदि तीन दुगला छः आदमी चलाते हैं तो उसे 'छकड़ी' कहते हैं। अधिक से अधिक छः आदमी तीन दुगलों द्वारा एक स्थान से तालाब से पानी निकालते हैं।

जब तालाब का पानी खेत के धरातल से लगभग ३-४ फ़ीट गहरा रहता है तो यह दुगले पानी निकाल कर लगभग दस घंटे में एक एकड़ की सिंचाई कर लेते हैं। यदि पानी तालाबों में चार फ़ीट से गहराई पर हुआ तो एक स्थान पर दुगला लगाने के बजाय दो स्थानों पर दुगला लगाया जाता है। एक स्थान से पानी उठाकर दूसरे स्थान पर पानी पहुँचाया जाता है; तब दूसरे स्थान पर से दुगले द्वारा पानी उठाकर खेत में पहुचाया जाता है। ऐसी अवस्था में ख़र्च अधिक पड़ता है; खेत भी क्षेत्रफल में कम सींचा जाता है। तालाबों और बाँधों से पानी उठाकर सिंचाई करने का यह प्राचीन तरीक़ा और यन्त्र है।

दुगलों की क़ीमत देहातों में प्रति दुगला तीन या चार आना होती है। तीन दुगलों की क़ीमत कम से कम बारह आना और

अधिक से अधिक एक रुपया होती है। प्रत्येक दुगले में दो-दो आना की रस्सियाँ लगती हैं। तीन दुगलों में छः आना की रस्सियाँ पर्याप्त होंगी।

देहातों में दुगलों के लिये तीन आना से लेकर चार आना तक खर्च करने पर रोज़ाना मज़दूर मिलते हैं। एक दुगला चलाने में चार मज़दूरों की ज़रूरत होती है। दो मज़दूर एक मर्तबे में लगभग एक घंटा दुगला चला सकते हैं। इसके बाद वह थक जाते हैं तब दो आदमियों की जोड़ी उन्हें छुड़ा देती है। वह लोग सुस्ताने लगते हैं। इस रीति से तीन दुगलों में बारह मज़दूरों की ज़रूरत होती है। यह बारह मज़दूर दिन भर मेहनत करके एक एकड़ की सिंचाई करते हैं। जब कि खेत तालाब के नज़दीक होता है। यदि खेत तालाब से दूर होता है तो ऐसी अवस्था में सिंचाई का क्षेत्रफल घटता जाता है। दुगले से सिंचाई करने में चार-पाँच रुपया प्रति एकड़ खर्च पड़ता है। इसलिये जिन गाँवों के तालाबों या बांधों में पानी पाया जाता है, वहाँ के किसान दुगले या बेड़ी को अधिक पसंद करते हैं।

बलदेवबाल्टी

तालाबों या झीलों में अब उन यन्त्रों द्वारा भी पानी उठाने का काम लिया जाने लगा है जो यन्त्र कि नहर में पानी उठाने का काम करते थे। इसलिये इन यन्त्रों का भी वर्णन यहाँ पर करना आवश्यक है। इन यन्त्रों में से बल्देव बाल्टी लोहे का एक यन्त्र है जिसे कानपूर

के सरकारी कृषि यन्त्रालय में बल्देव मिस्त्री ने बनाया था। जिसे सरकारी कृषि-विभाग के इञ्जीनियरों ने अपने अनुभवों के बाद इसको सिंचाई के लिये उपयोगी यन्त्र समझ कर किसानों में प्रचलित कर दिया।

इस यन्त्र में लोहे का लम्बा दो परनला होता है। वह परनाला, तालाबों, बाँधों या नहर में उस जगह लगाया जाता है जहाँ पर कि खेत का धरातल पानी की सतह से लगभग तीन फ़ीट के ऊँचा होता है। उस स्थान पर लकड़ी के खम्भे गाड़कर
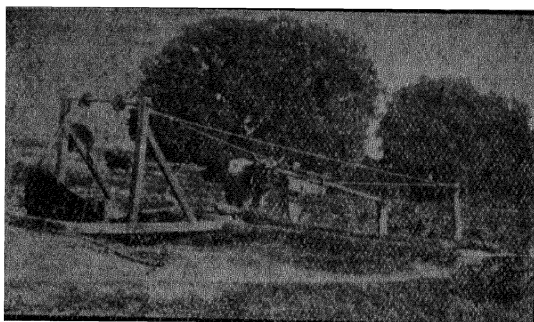
चित्र नं० ५
बलदेव बाल्टी

एक गड़ारी पुरवट की गड़ारी की तरह लगाई जाती है। इस गड़ारी पर रस्सा रखकर उसका एक सिरा लोहे के परनाले में बाँध दिया जाता है; दूसरा सिरा भी इसी प्रकार से बाँधकर बैल के जुये में जोड़ दिया जाता है। इस यन्त्र को चलाने तथा पानी उठाने

के लिये एक आदमी तथा दो जोड़ी बैल की आवश्यकता होती है। इस यन्त्र में बैल और आदमी रहट के समान एक ही स्थान पर गोलाई में जिस प्रकार से तेली का बैल-तेल के कोल्हू में घूमता है घूमते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि रस्से से जुड़े हुये परनाले पानी के ऊपर रहते हैं, बैल और आदमी कुछ दूर पर। जब बैल और आदमी घूमते हैं तो लोहे का परनाला पानी में पहुँच जाता है पानी से भर कर पहिला परनाला जब ऊपर उठता है तो दूसरा परनाला पानी में पहुँच जाता है। इस रीति से बारी-बारी से दोनों परनाले पानी उठाते हैं।

लगभग ढाई हज़ार गैलन पानी एक घण्टे में इस यन्त्र द्वारा उठाया जाता है। ९-१० घण्टा दिन भर इस यन्त्र को चलाकर लगभग ½ एकड़ की सिंचाई की जाती है। इस रीति से लगभग चार रुपया प्रति एकड़ सिंचाई में ख़र्च पड़ता है। इस यन्त्र का मूल्य आजकल लोहे का भाव बढ़ जाने के कारण अधिक हो गया है। पहिले यह कृषि-विभाग द्वारा ख़रीदने से साठ-पैंसठ रुपया तक में मिलता था।

इजिपशियन-स्क्रूवाटर-लिफ़्ट

जितनी गहराई से दुगना पानी उठाना है, उससे कम गहराई से अर्थात् दो-तीन फ़ीट की गहराई से यह यन्त्र भी पानी उठाकर खेतों में पहुँचाता है। मिश्र देश में इस यन्त्र द्वारा लगभग दो फ़ीट की गहराई से पानी उठाने का काम लिया जाता था। इस

देश में भी कृषि-विभाग द्वारा इसे प्रचलित किया गया है। यह यन्त्र लकड़ी का लम्बा बनाया जाता है। बीच में इसमें पेंचदार लकड़ी के टुकड़े लगाये जाते हैं। देखने में इसका आकार ढोल के सदृश होता है।

इस यन्त्र का एक सिरा तालाब के पानी में लकड़ी या लोहे का एक खूँटा गाड़ कर लगा देते हैं। जिस सिरे को पानी में

चित्र नं० ६

मिश्र का स्क्रू

लगाते हैं, उसमें लोहे का एक छड़ लगा रहता है; जिसमें एक छेद भी होता है। पानी में इसे ख़ूब मज़बूत गाड़ना चाहिये, जिससे जब

यह यन्त्र चलाया जावे तो उखड़े नहीं, यदि ढीला गाड़ा जायगा तो उखड़ जायगा; इतना ही नहीं ढीला होने पर आवश्यकतानुसार पानी भी नहीं उठा सकेगा। इसको चलाने के लिये दुगले की तरह दो आदमियों की ज़रूरत होती है, किन्तु यदि नव जवान हों तो एक आदमी पर्याप्त होगा। इसके दूसरे भाग को जो खेत के धरातल पर होता है हाथ से घुमाने पर पानी आप से आप ऊपर चढ़ आता है; एक घंटे में लगभग दो हज़ार से लेकर ढाइ हज़ार गैलन पानी प्रति घंटा इससे उठाया जाता है। ८-१० घंटे चला कर ½ एकड़ की सिंचाई प्रति दिन की जा सकती है। एक एकड़ सींचने में लगभग ३) व्यय पड़ता है। इस यन्त्र की कीमत ३५) से लेकर ४०) तक है।

चेनपम्प

तालाब, बांध तथा नहर से पानी उठाने का यह एक लोहे का यन्त्र है। जो जलाशय खेत के धरातल से ४-५ फ़ीट गहरे हैं। उनमें यह यन्त्र लगाया जाता है। लोहे का एक नल जो लगभग पांच-सात फ़ीट लम्बा होता है, इस यन्त्र के लकड़ी के चौकठों के बीच में डालकर पानी में छोड़ दिया जाता है। इस नल के बीच में लोहे की एक ज़ंजीर जिसमें लोहे के छोटे-छोटे तवे लगे रहते हैं, डाली जाती हैं। लकड़ी के चौकठों पर ऊपर लोहे की एक पहिया गोल-गोल लगी रहती है। इस पर वह ज़ंजीर चढ़ा दी जाती है। उसे दो आदमी एक साथ बार-बारी से चलाते हैं। इस

प्रकार से दिन भर चलाने के लिये चार आदमियों की ज़रूरत होती है। छोटे आकार-प्रकार का चेन पम्प जो पाँच फ़ीट की गहराई से पानी उठाता है, एक घंटे में लगभग चार हज़ार गैलन पानी उठाता है। दिन भर में ६-१० घंटे काम करके आधे एकड़
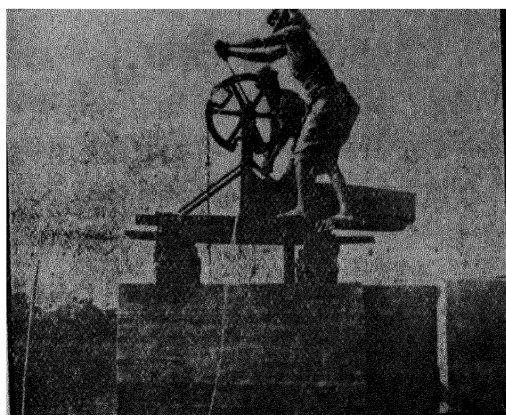
चित्र नं० ७

चेन पम्प

की सिंचाई कर सकता है। इस यन्त्र का दाम बल्देव बाल्टी के समान साठ-पैंसठ रुपया है। एक एकड़ सींचने में मज़दूरों की मज़दूरी १) से लेकर १।।) तक देनी पड़ती है।

इस प्रकार के यन्त्र पाँच फ़ीट से लेकर १५ फ़ीट तक के बनाये जाते हैं। जो १५ फ़ीट की गहराई तक पानी उठा सकते हैं। अधिक गहराई से पानी उठाने में सिंचाई का क्षेत्रफल कम हो

जाता है। इसके चलाने में लोहे का एक गियर लगता है। दो गियर के चेन पम्प भी बनाये जाते हैं, जिसे डबल गियर चेन पम्प कहते हैं। डबल गियर चेन पम्प बल्देव बाल्टी की भाँति बैलों से भी चलाया जाता है, अधिकतर इनका उपयोग नहरी इलाक़ों में होता है।

पानी का पहिया

झील, तालाब, इत्यादि जलाशयों से पानी उठने का यह लकड़ी का यन्त्र है। इसे कृषि-विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर डाक्टर सिंह ने अभी हाल में बनाकर प्रचलित किया है। इसका अनुभव उक्त डिप्टी डाइरेक्टर साहब ने अनेकों स्थानों पर किया है। उनके अनुभव से यह यन्त्र सफल सिद्ध हो चुका है। इसलिये इसका वर्णन आवश्यक है।

इस यन्त्र को पानी उठाने के लिये नहर झील, तालाब, सभी स्थानों मे लगा सकते हैं। इस यन्त्र द्वारा अधिक से अधिक तीन फीट की गहराई से पानी उठाया जाता है। इस यन्त्र को चलाने के लिये आठ आदमी लगाने पड़ते हैं। प्रति घंटा लगभग चौदह हज़ार गैलन पानी इस यन्त्र से उठाकर दो एकड़ की सिंचाई प्रतिदिन इस इस यन्त्र द्वारा की जा सकती है। इस यन्त्र का दाम ४०) है, लकड़ी का होने के कारण देहातों मे इसे देहाती कारीगरो द्वारा बनाकर इस्तेमाल किया जा सकता है: लोगों को इसका उपयोग अन्यान्य यंत्रों के समान करके इसका अनुभव प्राप्त करके लाभ उठाना चाहिये।

नहर

जिस प्रकार से कुएँ, तालाब, झील फसलों की सिंचाई के साधन है। उसी प्रकार से नहर भी फसलों की सिंचाई के लिये एक प्रधान साधन है, देश की उन्नति के लिये हरेक देश की सरकार फ़सलों की सिंचाई के लिये नहरों को खुदवाती है। हमारे देश तथा प्रान्त में भी गंगा, जमुना तथा शारदा नदियों से नहरें निकाली गई हैं; जिससे इस देश का बहुत बड़ा भूभाग सींचा जाता है।

नहर का पानी जिन खेतों में तोड़ की रीति से पहुँच जाता है। उसमें तो कम खर्च पड़ता है। किन्तु जिसमें उठाकर यन्त्रों द्वारा पानी पहुँचाया जाता है; उसमें खर्च अधिक पड़ता है। डाल द्वारा नहरों से सिंचाई करने के लिये अधिकतर वही यन्त्र नहर के इलाक़ों में भी काम में लाये जाते है; जिनका वर्णन इस पुस्तक में हो चुका है।

जिन स्थानों में नहरों द्वारा तोड़ से सिंचाई होती है। वहां के काश्तकार बड़े-बड़े बरहे बना कर एक दम खेत को पानी से भर देते है। इस रीति से अधिक पानी के कारण खेत की मिट्टी में सीलन बराबर बनी रहती है। जिससे फसलों की पैदावार अच्छी नहीं होती। इसलिये नहरी इलाकों के काश्तकारों को नहरों का पानी आवश्यकतानुसार व्यवहार में लाना फ़सलों की उपज की दृष्टि से लाभप्रद है।

मिर्ज़ापुर ज़िले में नदियों से नहर निकालने के बजाय पहाड़ों

के ऊपर बड़े-बड़े बाँध बाँधकर नहर के अधिकारियों ने सिंचाई के लिये जल एकत्रित किया है। इन पहाड़ी बाँधों का जल पहाड़ों की प्राकृतिक नदियों द्वारा नीचे लाकर ज़िले में फैलाया गया है। जिससे ज़िले की फ़सलों की सिंचाई की जाती है। जिन-जिन स्थानों में नहर द्वारा सिंचाई की जाती है। उन-उन स्थानों में नहर-विभाग के कर्मचारी सिंचाई के क्षेत्रफल का हिसाब-किताब गाँव के पटवारियों के समान रखते हैं। सिंचाई का मूल्य किसानों से हरेक फ़सलों के अनुसार लिया जाता है। सिंचाई से जो आय होती है वह नहर-विभाग में ख़र्च होती है। नहरों द्वारा सिंचाई की अनेकों सुविधाएँ नहर-विभाग के अधिकारियों द्वारा कृषकों को दी जाती है. जिन लोगों के गाँव नहर के इलाक़ों में पड़ते हैं. उन्हें सभी मार्गों से लाभ उठाना चाहिये।

खर्च हो जाती है। इस कारण मुख्य फ़सल के पौदे न तो पर्याप्त रूप से बढ़ने ही पाते हैं न बढ़ कर अच्छी पैदावार ही दे सकते हैं।

इसी प्रकार से वर्षाकाल के आरम्भ होने पर खरीफ की फ़सलें जब बोई जाती हैं; जैसे ज्वार, बाजरा, अरहर, तिल, उरद, मूंग, अरंडी, मिरची, शकरकंद इत्यादि तो इनके खेतों में भी खरपतवारों के पौदे बहुतायत से उग आते हैं। मुख्य फ़सलों के पौदे जब इन खरपतवारों के पौदों से चारों ओर से घिर जाते हैं तो उनकी बाढ़ मारी जाती है उपज भी कम होती है।

रबी की फ़सलों की बुवाई के बाद गेहूँ, जव, चना, मटर के खेतों में भी यदि निरीक्षण किया जाय तो सिंचाई के बाद बथुआ, गजरा, हरसिंगार, गोभी, मोंडा इत्यादि घर पतवारों के पौदे अधिकता से उग आते हैं। इन पौदों के उग आने से खेत की मुख्य फ़सल की ख़ुराक नष्ट होती है; तथा उपज भी मारी जाती है।

रबी, खरीफ तथा जायद की फ़सलों से इन खरपवारों के पौदों को निकाल बाहर करने के लिये फ़सलों की निकाई-गुड़ाई करना बहुत ही आवश्यक है। निकाई-गुड़ाई करने से खेतों से खरपतवार के पौदे निकल जाने से दो प्रकार के लाभ होते हैं। पहिला लाभ तो यह होता है कि फालतू पौदे जो मुख्य फ़सल के पौदों की ख़ुराक को बर्बाद करते थे, उनके निकल जाने से मुख्य फ़सल के पौदों को ख़ुराक अधिकता से मिलती है। जिससे उत्तम पैदावार की आशा की जाती है।

दूसरे निकाई के साथ-साथ खेतों की गुड़ाई अपने आप होती जाती है, जो चतुर किसान हैं, वह निकाई के यन्त्रों से उन जगहों को जहाँ घासें उगी रहती हैं, उसे तो भुरभुरा बनाते ही हैं; साथ ही आसपास की ज़मीन को तथा मुख्य फ़सलों के जड़ों के पास भी गुड़ाई करते जाते हैं, जिससे खेत की भूमि भुरभुरी हो जाती है। निकाई करके फालतू पौदों को निकाल देने के बाद खेतों की भली भांति गुड़ाई करके खेत को भुरभुरा बना देने से खेत के धरातल तथा गर्भतल के भीतर वायु और सूर्य के ताप का प्रवेश भली भांति होने लगता है; जिससे पौदों के लिये भूमि के भीतर ख़ूराक की मात्रा प्रचुरता से तैयार होती है।

जब तक भूमि के भीतर सूर्य की गर्मी तथा वायु पर्याप्त रूप में प्रवेश नहीं करती तब तक भूमि के भीतर पौदों की ख़ूराक इस रूप में अधिकता से तैयार नहीं होती, जिसे कि मुख्य फ़सलों के पौदे खाकर उत्तम श्रेणी की पैदावार दे सकें।

उक्त बातों के अतिरिक्त खेत की भूमि के भीतर पौदों की ख़ूराक को तैयार करने के लिये भूमि में अनेकों जीवाणु भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तनों द्वारा पौदों को भोज्य पदार्थ पहुँचाने के लिये कार्य करते रहते हैं। इन जीवाणुओं को उचित रीति से कार्य करने के लिए भूमि के भीतर पर्याप्त रूप से वायु और सूर्य के प्रकाश का पहुँचना आवश्यक है।

ऊपर निकाई-गुड़ाई के लाभ का दिग्दर्शन पाठकों को कराया गया है, जिससे यह बात भली प्रकार से समझ में आ गई होगी कि

जिस प्रकार से उत्तम श्रेणी की पैदावार लेने के लिये खेतों की जुताई, खाद, बुवाई, सिंचाई आवश्यक कृषि-कर्म हैं। उसी प्रकार से खेतों की खड़ी फ़सलों में निकाई-गुड़ाई करना तथा फ़सलों पर मिट्टी चढ़ाना भी एक आवश्यक कृषि-कर्म है, जो नियमानुसार नियत समय पर होना अतीव आवश्यक है।

जिस प्रकार से अन्यान्य कृषि-कर्मों के लिये कृषि-यन्त्रों की आवश्यकता होती है; उसी प्रकार से निकाई-गुड़ाई के लिये भी बहुत से कृषि-यन्त्र प्रयोग में लाये जाते हैं, उन यन्त्रों का वर्णन पाठकों की जानकारी के लिये किया जाता है।

निकाई-गुड़ाई के लिये खुरपी भारतवर्ष का एक बहुत ही प्राचीन कृषि-यन्त्र है। जब यह छोटे आकार-प्रकार की होती है तो इसे खुरपी कहते हैं। जब यह बड़े आकार-प्रकार का होता है तो इसे खुरपा कहते हैं। खुरपा और खुरपी दोनों का प्रयोग आवश्यकता और समय के अनुसार कृषि-कर्म में निकाई-गुड़ाई के लिये किया जाता है।

खरीफ़ तथा रबी की जो फ़सलें छिटकवाँ रीति से तथा हल के पीछे कूढ़ों में बोई जाती हैं। यह फ़सलें जब बोए जाने पर घनी उगती हैं। उस समय इन फ़सलों के खेतों में खर-पतवार के पौदे बहुतायत से उग आते हैं, उन खरपतवार के पौदों को निकालने के लिये तथा पौदों के बीच में छुटी हुई मिट्टी की गुड़ाई करने के लिये खुरपी तथा खुरपा से बढ़कर कोई भी कृषि यन्त्र नहीं है, जो फ़सलों की निकाई तथा गुड़ाई कर सके।

धान हमारे देश की एक मुख्य फसल है। धान की खेती का क्षेत्रफल इस देश में अन्यान्य फसलों की अपेक्षा कम नहीं है। धान की कुछ क़िस्में जिसे कुआरी या जल्द पकने वाली क़िस्में कहते हैं, खेतों में छिटकवां रीति से बोई जाती है। धान की जिन क़िस्मों की बेहन लगाई जाती है, उन क़िस्मों को भी 'बेहनउर' की क्यारियों में घने तौर पर बोते हैं। जब धान के पौदे उग आते हैं तो उनमें बहुत से खर-पतवार के पौदे आप से आप उगकर धान की बेहन को दबा देते हैं। ऐसे समय में धान की बेहन की निकाई-गुड़ाई करने के लिये छोटे आकर-प्रकार की खुरपियां ही काम देती हैं, नवीन प्रकार के वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र ऐसी बेहन की क्यारियों में काम नहीं कर सकते।

इन छोटी-छोटी खुरपियों द्वारा धान की फसल तथा उसके बेहन की क्यारियाँ चतुर किसानों द्वारा निकाई जाती हैं। इन खुरपियों के प्रयोग से धान की फ़सल का कोई पौदा नष्ट नहीं होता; जिससे फसल की कोई हानि नहीं होती। इसलिये खुरपी का प्रयोग निकाई-गुड़ाई के लिये आवश्यक है।

शाक-भाजी की जो फ़सलें उत्पन्न की जाती हैं। उनमें से बहुतों का बीज बेहन तैयार करने के लिये पहिले क्यारियों में छोड़ा जाता है; बेहन की क्यारियाँ खाद-पांस से पटी रहती हैं। इन क्यारियों में उर्वरा-शक्ति पूर्ण मात्रा में रहती है। शाक-भाजी के बीजों की जब बेहन डाली जाती है तो खर-पतवार के अधिकांश पौदे उगकर शाक-भाजी की बेहन के पौदों को दबा देते हैं। उस

समय में बेहन की इन क्यारियों की निकाई-गुड़ाई खुरपी द्वारा ही की जा सकती है। दूसरे कृषि-यन्त्र ऐसे समय में निकाई-गुड़ाई के लिये उपयोगी नहीं हो सकते।

देहातों में खरीफ़ की बहुत-सी फ़सलें जैसे ज्वार-बाजरा तिल, अरहर, सावाँ, काकुन, उरद, मूंग की फसलें अधिकतर किसान लोग छिटकवाँ रीति से ही बोते हैं। यह फ़सलें जब उगकर बढ़ने लगती हैं तो खर-पतवारों के पौदे इन फ़सलों को दबा देते हैं। उस समय में इन छिटकवाँ रीति से बोई हुई फसलों की निकाई-गुड़ाई खुरपी तथा खुरपे द्वारा ही की जा सकती है। इससे यह बात भली प्रकार से समझ में आ जाती है कि जो फसलें छिटकवाँ रीति से बोई जाती हैं, तथा बहुत ही घनी उगती हैं। उसमें खुरपी द्वारा ही निकाई-गुड़ाई हो सकती है।

रबी की फ़सलों में जव, गेहूँ, मटर इत्यादि जब सिंचाई के बाद बढ़ने लगते हैं तो इन फ़सलों में गजरा, बथुआ, हरसिंगार के पौदों को हाथ से उखाड़ कर निकाई का काम करते हैं। कहीं-कहीं पर कुछ काश्तकार इस काम में भी खुरपी का प्रयोग करते हुये देखे गये हैं। किन्तु अधिकतर रबी की फ़सलों में खरपतवार के पौदे हाथ से ही उखाड़े जाते हैं।

खरीफ़ की कुछ फ़सलें जब बहुत घनी उग आती हैं तो इन घनी उगी हुई फ़सलों को जब खरपतवार के पौदे भली प्रकार से दबा लेते हैं; तो बहुत से किसान देशी-हल से हल्के हाथ से

फुलफुले तौर पर खेत में खड़ी हुई फ़सल को जोत देते हैं। खड़ी फ़सल में इस जुताई को खेतों को 'बिदहना' कहा जाता है।

देशी-हल से जिन खेतों की खड़ी फ़सल बिदह दी जाती है उन खेतों की बहुत सी घास-फूस तथा असल फ़सल के पौदे जो घने उगे रहते हैं, आप से आप उखड़-पुखड़ जाते हैं। खेत की मिट्टी भी देशी हल द्वारा खेतों को बिदहने से गुड़ जाती है। इस रीति से खेतों की निकाई-गुड़ाई अपने आप हो जाती है। खुरपी के अतिरिक्त देशी-हल द्वारा भी बहुत सी फ़सलों में निकाई-गुड़ाई की जाती है।

उक्त यन्त्रों को छोड़कर जो हमारे देश में प्राचीन काल से ही निकाई-गुड़ाई के काम में आते हैं। वर्तमान काल में वैज्ञानिक रीतियों से बहुत से नवीन यन्त्र भी बनाये गये हैं जो फ़सलों की निकाई-गुड़ाई करते हैं। यह नवीन यन्त्र छिटकवाँ रीति से बोई हुई फ़सलों में निकाई-गुड़ाई नहीं कर सकते। इन यन्त्रों को प्रयोग करने वालों के लिये यह आवश्यक है कि जो फ़सलें क़तारों में पर्याप्त दूरी पर बोई जा सकें; साथ ही इस रीति से बोने पर उत्तमी श्रेणी की उपज प्राप्त हो सके; उन फ़सलों को क़तारों में बोएँ। क़तारों में बोई हुई फ़सलों की निकाई-गुड़ाई करने के लिये नवीन वैज्ञानिक-कृषि-यन्त्र अधिक लाभप्रद सिद्ध हुये हैं। क़तारों में बोई हुई फ़सलों की निकाई-गुड़ाई में खुरपी द्वारा लाभ नहीं प्राप्त हो सकता। क़तारों में बोई हुई फ़सलों की निकाई-गुड़ाई के लिये देशी कृषि-यन्त्रों में कुदाल का प्रयोग किया जाता है।

इस कुदाल के यन्त्र को कहीं-कहीं पर कुदार या कर्सी भी कहते हैं। खुरपी के समान यह भी लोहे का एक देशी-कृषि यंत्र है जो देशी लुहारों द्वारा बनाया जाता है। खुरपी की क़ीमत एक आना से लेकर चार आना तक होती है। कुदाल छः आना से लेकर आठ आना तक में मिलती है।

खुरपी और कुदाल की निकाई-गुड़ाई में केवल इतना ही अंतर है कि खुरपी द्वारा मज़दूर खेतों में बैठे-बैठे निकाई-गुड़ाई करते हैं। किन्तु कुदाल द्वारा क़तारों में बोई हुई फ़सल की निकाई-गुड़ाई झुककर या निहुरकर की जाती है। कुदाल से क़तारों के बीच की भूमि गोड़कर उसमें से खर-पतवार के पौदे बीन लिये जाते हैं। मिट्टी के बड़े-बड़े ढलों को हाथ से या कुदाल के नीचे वाले भाग से तोड़कर चूर-चूर कर देते हैं। इस रीति से खुरपी तथा कुदाल द्वारा छिटकवां तथा क़तारों में बोई हुई फ़सलों की निकाई-गुड़ाई की जाती है।

उन्नति प्राप्त जो कृषि-यन्त्र निकाई-गुड़ाई के काम में आते हैं। उसे "हो", हैरो, तथा कल्टीवेटर के नाम से पुकारा जाता है। बहुत से उपर्युक्त नाम के कृषि-यन्त्र मनुष्यों द्वारा हाथ से उत्तमता से चलाये जाते हैं। जिनसे क़तारों में बोई हुई फ़सलों की निकाई-गुड़ाई भी होती है। उन यन्त्रों में डाक्टर सिंह साहब का बनाया हुआ "हो" बहुत ही सस्ता और लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसका मूल्य लगभग १) है; इसे देशी लुहार देहातों में बना सकते हैं। इसके लोहे के भाग को बनाने के लिये देशी लोहा इस्तेमाल किया जा सकता है। लकड़ी का वह भाग

जो हाथ से पकड़ कर खेतों में चलाया जाता है, बाँस का होता है। यह भी देहातों में आसानी से मिल जाता है। इस यन्त्र में ख़ूबी यह है कि क़तारों में बोई हुई फ़सल को जैसे मक्का, मूंगफली, अरहर, कपास, गन्ना तथा शाक-भाजी की फ़सलों में एक आदमी इसे खड़े-खड़े आसानी से चला सकता है। उसे झुकने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। कुदाल द्वारा मनुष्य को झुककर फ़सलों
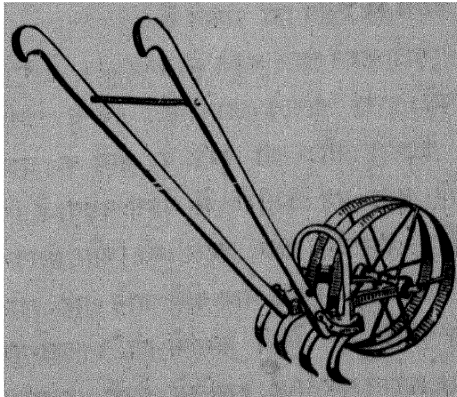
चित्र नं० ८

हैण्ड हो

की गुड़ाई करना पड़ता है; किंतु इस "हैण्ड हो" में यह बात नहीं है। इसलिये फ़सलों की गुड़ाई के लिये इस "हैण्ड हो" का प्रयोग वर्तमान काल में किसानों के लिये लाभप्रद है।

हाथ से निकाई-गुड़ाई करने के लिये "जूनियर लैनेट" भी एक कृषि-यंत्र है, किंतु इसका दाम २४) के लगभग पड़ता है, जिसे

साधारण किसान खरीद नहीं सकता; जो लोग इसे खरीद सकते हैं, वह इस यंत्र द्वारा क़तारों में बोई फ़सलों की निकाई-गुड़ाई करने के अतिरिक्त इस यंत्र को बाग़ तथा फुलवारियों के काम में भी इस्तेमाल कर सकते हैं। हाथ से खड़े होकर निकाई-गुड़ाई करने के लिये बाज़ारों में आजकल बहुत से क़िस्म के "हैण्ड हो" बिकते हैं, जो स्थानीय कृषि-विभाग के कर्मचारियों की राय से खरीदे और इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

निकाई-गुड़ाई करने वाले बहुत से यन्त्र अब ऐसे भी बन गये हैं जो पशुओं द्वारा चलाये जाते हैं। किन्तु ऐसी अवस्था में फ़सलों को डेढ़-दो फ़ीट की दूरी पर बोने के बजाय लगभग तीन फ़ीट की दूरी पर क़तारों में बोना पड़ता है। ऐसी फ़सलों में गन्ना, भांटा, टमाटर तथा बहुत सी और शाक-भाजी तथा फल-फूल की फ़सलें हैं, जो एक बार बोये जाने पर साल भर तक खेतों में खड़ी रहती हैं। ऐसी फ़सलों की निकाई-गुड़ाई वर्ष के भीतर कई बार करना पड़ता है, इसलिये ऐसी फ़सलों की निकाई-गुड़ाई के करने के लिये बैलों द्वारा चलने वाले कृषियन्त्रों को ही इस्तेमाल करना लाभदायक है।

उक्त प्रकार के कृषि-यन्त्रों में यह ख़ूबी होती है कि पर्याप्त फ़ासिले पर बोई हुई फ़सलों की निकाई-गुड़ाई के साथ फ़सलों की जड़ों पर मिट्टी भी साथ-साथ चढ़ती जाती है। ऐसे यन्त्रों की बनावट मिट्टी पलटने वाले हलों के समान होती है, किन्तु इन यन्त्रों में दोनों ओर मिट्टी पलटने वाला भाग लगा रहता है; जिससे जब

यह क़तारों के बीच में चलाया जाता है तो क़तारों में बोई हुई दोनों क़तारों के बीच तो यह यन्त्र चलता है और फसलों की क़तारों के बाहर बैल चलते हैं। ऐसी अवस्था में यह यन्त्र क़तारों के बीच वाले भाग की मिट्टी तथा खरपतवार को खोदकर फसलों की जड़ों पर चढ़ा देता है। इस काम के लिये देशी-यन्त्रों में फावड़ा एक ऐसा यन्त्र है जो काम में लाया जाता है।

फावड़ा जिसे कहीं-कहीं पर फरुहा भी कहते हैं, लोहे का एक प्राचीन यन्त्र है—जो भूमि की खुदाई के काम में विशेषरूप से आता है; इस फावड़े को फसलों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने के लिये मजदूरों द्वारा प्रयोग किया जाता है। गन्ने की फसल जो क़तारों में नाली बनाकर बोई जाती है; उन नालियों को गिराने के लिये तथा गन्ने की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने के लिये फावड़े का उपयोग किया जाता है। फावड़ा सवा-डेढ़ रुपये में खरीदा जा सकता है, किंतु बैलों द्वारा निकाई-गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाने वाले कृषि यंत्र ४०) के लगभग खर्च करने पर खरीदे जा सकते हैं। थोड़े क्षेत्रफल में खेती करने वालों के लिये फावड़ा ही उपयोगी है; किंतु अधिक क्षेत्रफल में तथा जिन गाँवों में फसलों की चकबंदी सहयोग-समितियों द्वारा हो गई हो; उन गाँवों में नवीन वैज्ञानिक कृषियंत्रों को भी इस काम के लिए खरीदा जा सकता है।

फ़सलों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाना

बहुत सी ऐसी फ़सलें हैं, जिनकी निकाई-गुड़ाई करने के बाद

उनकी जड़ों पर मिट्टी नहीं चढ़ाना पड़ता है। किंतु कुछ फ़सलें ऐसी हैं, जिनकी निकाई-गुड़ाई के बाद मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है। इन फसलों में से गन्ना, मक्का, आलू, शकरकंद, बण्डा, घुइयाँ भाँटा इत्यादि फसलों की जड़ों पर बिना मिट्टी चढ़ाये काम नहीं चल सकता, न पैदावार ही अच्छी होती है। इसलिये क़तारों में पर्याप्त दूरी पर बोने के बाद फावड़े से या नवीन वैज्ञानिक कृषियंत्रों से इन फ़सलों की जड़ों पर मिट्टी अवश्य चढ़ाना चाहिये।

असावधानी से या आलसवश यदि इन फ़सलों की जड़ों पर मिट्टी न चढ़ाई जायगी तो इनमें से जो फ़सलें लम्बाई में अधिक बढ़ती हैं, वह बढ़ कर गिर पड़ेंगी; जैसे मक्का और गन्ना। इन फसलों के गिर जाने से पैदावार मारी जायगी। शकरकंद तथा आलू में यदि मिट्टी न चढ़ाई जायगी तो भूमि में आलू तथा शकरकंद की जड़ें जो मनुष्य-समाज के उपयोग में आती हैं, बहुतायत से न तो पड़ेंगी ही; न मुटाई में ही मोटी होंगी। इसलिये ऐसी फ़सलों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है।

खड़ी फ़सलों में बीजों का चुनाव

जब फ़सलों की सिंचाई-निकाई-गुड़ाई हो चुकती है तो इसके बाद फसलें बढ़ती हैं। बढ़ने पर उनमें फूल-फल आने लगता है। ऐसे समय में फ़सलों के पौदों पर अनेकों प्रकार की आपत्तियाँ आती हैं। इन आपत्तियों में फ़सलों के रोग, कुसमय की वर्षा, पाला, इत्यादि दैविक प्रकोप हैं। इनके अतिरिक्त गाँवों की कुप्रथाएँ

तथा फसलों की चोरी; पशुओं द्वारा फ़सलों की हानि; जिन-जिन रीतियों से होती हैं, उनका निवारण करके खड़ी फसलों के ही समय बीजों के लिये फ़सलों में से कुछ पौदों के बीज या फ़सल का कुछ हिस्सा छाँट कर बीज के लिये छोड़ना बहुत ही आवश्यक है।

शुद्ध तथा निरोग बीज बोये जाने के बाद भी खड़ी फसलों में जब फसलें फूट आती हैं और उनकी बालियां निकल आती हैं तो निरीक्षण करने से खेतों में बहुत से अन्यान्य जाति के पौदे दृष्टिगोचर होते हैं। इन पौदों को खड़ी फसलों में से चुनकर निकाल देना चाहिये, जिससे फ़सलों के बीज शुद्ध तथा निरोग मिल सकें। क्योंकि अगली फ़सल को बोने के लिये बीजों की आवश्यकता पड़ती है; यदि तैयार खड़ी हुई फसलों में बीजों का चुनाव न किया जायगा तो बीज की समस्या हल न हो सकेगी। काश्तकारों को अपने लिये--तथा जो लोग बीज का व्यवसाय करते हैं, अथवा फ़सलों का बीज; बीज की दृष्टि से खरीदना चाहते हैं; उनके लिये शुद्ध तथा निरोग बीज का चुनाव खड़ी फ़सलों में करना चाहिये।

मान लीजिये कि किसी काश्तकार को मक्का, ज्वार या बाजरे का बीज एकत्रित करना है तो उसे प्रति दिन के निरीक्षण से उक्त फसलों के खेतों में कुछ ऐसे पौदों का चुनाव करना चाहिये जिन पौदों में कि पहिले फूल तथा फल आवें। उन पर किसी किस्म का रंगीन कपड़ा बाँध कर पौदों की पहिचान करने के लिये ऐसा निशान लगाकर छोड़ देना चाहिये।

उक्त रीति से कुछ पौदों का चुनाव करने के बाद उनका

निरीक्षण करते रहना चाहिये। जब इन पौदों की फसल तैयार हो जाय तो इन्हें काटकर इनके भुट्टों तथा बालियों को जो देखने में हृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ हों अलग रखकर इनका बीज या इन बालियों को ही बीज की दृष्टि से सुरक्षित रखना चाहिये. जिससे अगली फसल को बोने के लिये किसानों को बीज मिल सके: ऐसे बीजों के व्यापार से भी अधिक लाभ होता है।

खरीफ़ की फसलों के अतिरिक्त रबी की फसलों में जब, गेहूँ चने, मटर की फसलों का कुछ भाग बीज के लिये नियत कर लेना चाहिये। जब फसलें फूटकर पकने लगें तो बीज के संरक्षण की दृष्टि से गेहूँ तथा जब के खेतों का निरीक्षण करना चाहिये। देहातों में यदि किसी किसान के गेहूँ के खेत का निरीक्षण बीज की दृष्टि से किया जाय तो गेहूँ के खेत में सींकुरदार तथा बग़ैर सींकुरदार गेहूँ के पौदे दिखलाई पड़ते हैं। इसी प्रकार से जो किसान कृषि-विभाग द्वारा शुद्ध तथा निरोग बीज लाकर बोते हैं. उनके खेतों में भी अन्यान्य गेहूँ के पौदे उगे हुये पाये जाते हैं। जैसे गेहूँ पूसा नं० ५२ में पूसा गेहूँ नं० ४ तथा १२ के भी पौदे कहीं-कहीं पर दिखलाई देते हैं। इतना ही नहीं देशी गेहूँ की भी बालियां दिखलाई पड़ती हैं। ऐसी अवस्था में इन खेतों से अजातीय पौदों को तथा उनकी बालियों को चुनकर निकाल लेना चाहिये। जिससे बीज शुद्ध रहे।

प्रत्येक वर्ष यदि इस रीति से खड़ी फसलों का चुनाव बीज की दृष्टि से किया जाय तो किसानों का बीज अपने आप शुद्ध रहेगा।

बीजों की शुद्धता का ध्यान खेतों से लेकर खलिहान तक के कार्यों में करना पड़ता है।

जिस प्रकार से गेहूँ का बीज खड़ी फसलों से चुनकर शुद्ध किया जा सकता है। उसी प्रकार से जव, चना, मटर का भी बीज शुद्धता की दृष्टि से चुनना चाहिये। फसलों का चुनाव फसलों के फूलों को भी देखकर किया जा सकता है। मटर तथा चने की फसलों में कुछ फूल तो सफ़ेद होते हैं; कुछ पौदों के फूल लाल होते हैं। फूल आने के समय यदि इन पौदों को छाँट लिया जाय। साथ ही इन पौदों पर निशान लगा दिया जाय; बाद में इन पौदों को पकने पर उखाड़ कर अलग रखा जाय।

इन पौदों द्वारा जो बीज प्राप्त हो उनकी बुवाई अलग की जाय तो कुछ दिनों के बाद शुद्ध बीज आप से आप प्राप्त होने लगेगा। आजकल खड़ी फसलों का जब से कि वह फूलने लगती है निरीक्षण करने से पता चलता है कि एक ही खेत में कई क़िस्म के फूलों के पौदे हैं। फूलों की दृष्टि से तथा फसलों के फूट आने पर बालियों की दृष्टि से; इतना ही नहीं, इनसे प्राप्त होने वाले बीजों की दृष्टि से भी खड़ी फसलों में बीजों का चुनाव करना अतीव आवश्यक है; जो किसान बीजों की शुद्धता तथा चुनाव की ओर ध्यान नहीं देते; उनकी फसलों से खाने-पीने के लिये तो अन्न प्राप्त किया जा सकता है; किंतु बीज के लिये उनका अन्न उपयोगी नहीं होता।

फ़सलों की रखवाली

जब 'संवार' में फ़सलें पकने लगती हैं और फ़सलों में जैसे ही फल-फल, बीज पड़ने लगता है। इतना ही नहीं जब यह कच्ची अवस्था में ही रहती हैं, तभी से फ़सलों को हानि पहुँचाई जाने लगती है। दैवी प्रकोपों के अतिरिक्त फ़सलों को अन्यान्य रीतियों से भी हानि पहुँचती है। इन हानि पहुँचाने वाले ज़रियों में से कुछ ज़रिये तो ऐसे हैं, जिनकी रोक थाम किसान लोग आपस में मिलकर सहयोग द्वारा कर सकते हैं।

देहातों में गाँवों में कुछ किसान ऐसे होते हैं जो रात में चोरी से अधपकी फ़सलों को काटकर अपने जानवरों को खिलाते हैं। ज्वार, बाजरा, मक्के के भुट्टे खरीफ़ की फ़सलों में अधिकतर रात में चुरा कर काटे तथा खिलाये जाते हैं। उरद, मूंग की फ़सलों के पौदों को भी रात में उखाड़ कर चुरा कर खिलाने का रवाज़ देहातों में अधिकता से प्रचलित है।

रबी की फ़सलों में से सरसों तथा कुसुम के पौदे तथा फली हुई अरहर की फलियों को उखाड़ कर तथा तोड़कर पशुओं को खिलाने का रवाज़ प्रचलित है। चने तथा मटर की पकी फ़सल को उखाड़ने तथा घोड़-घोड़ियों को एवं अन्यान्य पशुओं को खिलाने की कुप्रथा का रवाज़ अभी तक देहातों में क़ायम है। आलू तथा शकरकंद की फ़सलों को तो अधिकतर चाँदनी रात में चोरों द्वारा खोदकर हानि पहुँचाई जाती है।

उक्त रीतियों के अतिरिक्त फाल्गुन मास में जब फ़सलें पककर तैयार होती हैं, तो बहुत से गाँवों में यह कुप्रथा है कि रात में घोड़े-घोड़ी बैल छोड़ दिये जाते हैं। जिससे पकी हुई खड़ी फ़सलों को अधिक हानि होती है। ऐसे लोगों की संख्या देहातों में इनीगिनी होती है। यह लोग सभी किसानों की फ़सलों को हानि पहुँचाते हैं। ऐसे लोग देहातों में अपनी बुरी आदतों के कारण लोगों पर आतङ्क जमाये रहते हैं, जिससे ग्रामों की जनता इनसे दबती है। इस रीति से जो लोग पशुओं द्वारा तथा चोरी करके फ़सलों को हानि पहुँचाते हैं; उनकी रोक थाम गाँव की सहयोग-समितियों द्वारा ही की जा सकती है।

जिन लोगों में ऐसी हरकतें पाई जांय उन लोगों को सब लोग मिलकर पहिले तो समझावें; बाद में स्वयंसेवकों द्वारा रात में फ़सलों की रखवाली की जाय; रात में जो लोग ऐसी हरकतें करते हुये स्वयंसेवकों के दल को मिलें; उन्हें क़ानूनी तरीक़े से दण्ड दिलाने का प्रबन्ध किया जाय। यह दण्ड गाँव की पंचायतों द्वारा देने से कुछ दिनों में ऐसी कुप्रथाओं का लोप हो सकता है।

खड़ी फ़सलों की बहुत कुछ हानि चिड़ियों तथा जंगली पशुओं द्वारा होती है। चिड़ियाँ प्रातःकाल तथा सायंकाल ज्वार बाजरा, मक्के, मटर, चने इत्यादि की फ़सलों को विशेषरूप से हानि पहुँचाती हैं। इनकी रक्षा के लिये खेतों में मचान गाड़ कर ढेल बांसों का उपयोग किसानों के लिये लाभदायक है।

इन मचानों पर दिन तथा रात में बैठकर फ़सलों की रक्षा

जा सकती है : बन्दूक़ की आवाज़ से भी चिड़ियाँ तथा बनैले जानवर भाग जाते हैं। ज़रूरती बन्दूकों का लाइसेंस ज़िले के अधिकारियों द्वारा मिल सकता है।

बहुत से बनैले जानवर जो बिलों में रहते हैं, रात में ऐसे जानवर निकलकर फ़सलों को हानि पहुँचाते हैं। इन जानवरों में साही, चूहे इत्यादि ऐसे जानवर हैं, जिनका वध साइनोगैस के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। साइनो गैस प्रयोग करने के लिये कृषि-विभाग के अधिकारियों की सहायता आवश्यक है।

अतिरिक्त इसके यदि अन्य।न्य रीतियों से फ़सलों को हानि पहुँचती हो तो स्थानीय कृषि-कर्मचारियों के सलाह-मशविरा से उपयोगी तरकीबें सोचकर फ़सलों की रखवाली तथा रक्षा करना चाहिये।

फ़सलों की कटाई

जब फ़सलें पक जाती हैं तो उन्हें काटकर खलिहान में लाना चाहिये, फ़सलों को काटने के पहिले खलिहान को साफ़ करना आवश्यक है, जिसमें सभी प्रकार की फ़सलें अलग-अलग पर्याप्त दूरी पर रक्खी जा सकें। खलिहान के सम्बन्ध में अगले पृष्ठों में सारी बातें लिखी जायँगी। इस समय कटाई के सम्बन्ध में सारी आवश्यक बातों का वर्णन किया जायगा।

खेतों से फ़सलों को काटने के लिये कई प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग आजकल किया जाता है, कुछ यन्त्र तो ऐसे हैं जो प्राचीन काल से ही हमारी खेती के काम में व्यवहृत होते रहे हैं; कुछ यन्त्र ऐसे हैं; जो आजकल के समय में वैज्ञानिक रीतियों से बनाए गये हैं।

यह सारे यन्त्र जो फ़सलों की कटाई के काम में प्रयोग किये जाते हैं, लोहे के बनाए जाते हैं। इन यन्त्रों में एक सिरे पर हाथ से पकड़ने के लिए लकड़ी का एक भाग लगा रहता है जिसे बेंट कहते हैं। कटाई के काम में देशी-यन्त्रों में हँसिया या दराँती का उपयोग प्रचुरता से होता है।

हँसिया देहातों में लुहारों द्वारा बनाई तथा बेंची जाती है हँसिया का मूल्य दो आना से लेकर छः आना तक प्रत्येक हँसिये का खरीदते समय देना पड़ता है। कटाई के समय हरेक मजदूरों के

पास हँसिये का होना आवश्यक है। हँसिये द्वारा खरीफ़ की फ़सलों में मक्का, ज्वार, बाजरा, उरद, मूँग इत्यादि की फ़सलें तथा रबी में जव, गेहूँ, चना, मटर, सरसों, कुसुम, अलसी इत्यादि की फ़सलें काटी जाती हैं, जिन फ़सलों के तने पतले तथा महीन होते हैं। उन फ़सलों की कटाई तो हँसियों से हो सकती हैं, किन्तु जिन फ़सलों के तने कड़े तथा मोटे होते हैं। उनकी कटाई के लिये लोहे के गड़ासों का प्रयोग किया जाता है।

गन्ना, अरहर, सनई, अण्डी, पटसन इत्यादि फ़सलों की कटाई हँसिए से नहीं हो सकती है; इन फ़सलों की कटाई के लिये गड़ासों का प्रयोग ही उपयुक्त होता है। गड़ासों द्वारा यह फ़सलें काटकर खलिहान मे जमा की जाती हैं। यह गड़ासे भी लोहे द्वारा देशी लुहारों से बनवाये तथा खरीदे जाते हैं। इनका मूल्य लगभग १) प्रति गड़ासा होता है। इन गड़ासों में लकड़ी का एक भाग होता जिसमें लोहे का गड़ास कस दिया जाता है। लकड़ी के इस भाग को कहीं-कहीं जलई भी कहते हैं। इसमें लकड़ी के बेंट वाले भाग को पकड़ कर फ़सलों की कटाई करते हैं।

बहुत सी फ़सलें ऐसी हैं, जिनकी जड़ उपयोग मे लाई जाती है इन फ़सलों की जड़ें भूमि के भीतर बढ़ती हैं। उनकी खुदाई के लिये कुदाल तथा फावड़े का प्रयोग किया जाता है। इन फ़सलों में आलू बंडा, शकरकंद, मूली, गाजर इत्यादि की गणना की जाती है।

कुछ फ़सलें ऐसी भी हैं, जिनकी जड़ें महीन होती हैं। उन्हें भूमि से उखाड़ने के लिये किसी यन्त्र की आवश्यकता नहीं होती

जैसे मटर। मटर की फ़सल हाथों से ही खेत से उखाड़ ली जाती है।

जिन देशों में वैज्ञानिक रीतियों से खेती की जा रही है, वहाँ पर आलू इत्यादि फ़सलों की खुदाई के लिये बैलों से चलने वाले यन्त्र बनाए गये हैं। इस यन्त्र को "पोटैटोडिगर" अर्थात् आलू खोदने वाला यन्त्र कहते हैं।

रबी की फ़सलों की कटाई के लिये भी वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र बनाए गये हैं। कटाई की इन मशीनों से गेहूँ, जव इत्यादि रबी की कुछ फ़सलें काटी जाती हैं। थोड़े क्षेत्रफल में खेती करने वाले लोग इन यन्त्रों का प्रयोग नहीं कर सकते।
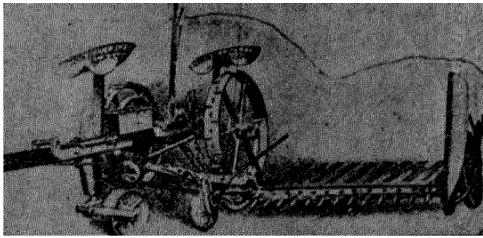
चित्र नं० ९
कटाई की मशीन

जो लोग अधिक क्षेत्रफल में खेती करते हैं। वह लोग गेहूँ, जव की फ़सलें इन मशीनों से काट सकते हैं। यह मशीनें उन गाँवों के लिये भी लाभदायक सिद्ध होंगी, जिन गाँवों में फ़सलों की चकबन्दी सहयोग-समितियों की स्थापना से हो चुकी हो; वहाँ के किसान

सहयोग-समितियों द्वारा ऐसी मशीनों को खरीद कर फसलों की कटाई के उपयोग में ला सकते हैं।

कटाई की यह मशीन दो जोड़ी मजबूत बैलों द्वारा खेतों में चलाई जाती है. इस मशीन के ऊपर एक आदमी बैठकर इस मशीन को चलाता है। इस मशीन के नीचे भाग में उसी प्रकार से लोहे की छूरियाँ लगी रहती हैं; जिस प्रकार से घास काटने की मशीन में छूरियाँ लगी रहती हैं। मशीन जब खेत में चलती है तो मशीन की छूरियाँ बराबर इधर-उधर चलती रहती हैं। इन छूरियों से गेहूँ, जव के पौदे जड़ से कट जाते हैं। बाद में मज़दूरों द्वारा इन पौदों को इकट्ठा करके बंडल बना लेते हैं। इन बण्डलों को खलिहान मे लाकर एकत्रित करते है। कटाई की इन मशीनों का मूल्य तीन सौ रुपया के लगभग है। आजकल का मूल्य कृषि-विभाग द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। दस घण्टे काम करके यह मशीन ४-५ एकड़ खेत काट सकती है।

मज़दूरों द्वारा हँसियों से जो फ़सलें काटी जाती हैं। उनमें कम से कम छ: और अधिक से अधिक आठ मज़दूर प्रति एकड़ की कटाई के लिये पर्याप्त होते हैं। अतिरिक्त इसके फ़सलों की कटाई भिन्न-भिन्न फ़सलों में भिन्न-भिन्न रीतियों से की जाती है। इसलिये मज़दूरों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। जिससे व्यय भी इस रीति से घटता-बढ़ता रहता है।

फ़सलों को काटने वाले मज़दूरों को कुछ स्थानों पर तो नक़द मज़दूरी दी जाती है; कुछ स्थानों पर मज़दूरों को कटी

हुई फ़सलों में से कुछ भाग दिया जाता है। रबी की फ़सलों को काटने वाले मज़दूर कुछ स्थानों में तो पैसे की मज़दूरी लेते हैं। कुछ स्थानों में यही मज़दूर अन्न की मज़दूरी लेते हैं। कुछ स्थानों के मज़दूर रबी की फ़सलों को काटकर खलिहान में एकत्रित करने के बाद शाम को गेहूँ, जव या जो कोई फ़सल काटते हैं। उसका एक बोझ मज़दूरी के रूप में ले जाते हैं, जिसे देहातों में 'लेहना' कहते हैं। 'लेहना' की प्रथा पर फ़सलों की कटाई का रवाज बहुत से ग्रामों में अभी भी प्रचलित है। लेहना की प्रथा द्वारा कटाई करने पर मज़दूरों को साधारण मज़दूरी से अधिक आय हो जाती है। दाने और भूसे का मूल्य मिलाकर लेहना की प्रथा में मज़दूरों को छः आना से लेकर प्रति दिन आठ आना तक आय होती है। चैत्र में इस प्रथा से कटाई करने के लिये देहातों में मज़दूर बहुतायत से मिलते हैं।

जिन स्थानों में रबी की फ़सलें 'लेहना' की प्रथा से काटी जाती हैं। उन्हीं स्थानों में ख़रीफ़ की फ़सलें ज्वार, बाजरा को भी देहाती मज़दूर 'सोरहठा' की प्रथा से काटते हैं। सोरहठा की प्रथा में मज़दूर खेत से ज्वार-बाजरे की पकी हुई फ़सलें काटकर खलिहान में जमा करते हैं। बाद में ज्वार, बाजरा के भुट्टे या बालियों को हंसियों से कतर कर एकत्रित करते हैं। जितनी बालियाँ या भुट्टे कतरे जाते हैं; उनका वज़न करके या अन्दाज़ से पन्द्रह भाग तो किसान ले लेता है; सोलहवाँ भाग मज़दूर को दिया जाता है। इस रीति से कटाई करने को सोरहठा की

रीति की कटाई कहते हैं; इस रीति में किसानों और मज़दूरों को सहूलियत रहती है।

आजकल सोरहठा की रीति में अनेकों प्रकार की बुराइयां आ गई हैं; जिससे फ़सलों की अधिक हानि होती है; मज़दूर लोग दिन में ज्वार-बाजरे का बहुत सा भाग वैसे भी ले जाते हैं; जिससे उपज की हानि होती है। लेहना तथा सोरहठा की जो रीतियां किसानों में प्राचीनकाल से चली आ रही हैं, उनका अध्ययन करके उनमें सुधार करने की अतीव आवश्यकता है।

इन रीतियों से फ़सलों की कटाई करने में यद्यपि किसान और मज़दूर दोनों प्राचीन रिवाज़ होने के कारण कुछ बोलते नहीं हैं। क्योंकि किसानों के पास नक़द मज़दूरी देने के लिये न तो इतना पैसा रहता है कि वह नक़द मज़दूरी दे सकें। न इतना अन्न ही रहता है कि फ़सलों की कटाई के समय ख़र्च कर सकें। इसलिये प्राचीन काल से जो बातें चली आ रही हैं उन्हीं पर लोग चलते जा रहे हैं।

उक्त प्रथाओं के कारण किसानों और मज़दूरों में असंतोष अवश्य बढ़ता जा रहा है, किन्तु कोई सुधार न होने के कारण लोग विवश हैं; विवशता के कारण यह प्रथाएँ अभी तक देहातों में प्रचलित हैं; समय आ गया है कि कृषि-विभाग इन प्रथाओं का अध्ययन करके इनमें उचित सुधार कर दे, जिससे किसानों और मज़दूरों को समान रीति से लाभ हो। अन्यथा फ़सलों की कटाई

में इन प्रथाओं द्वारा व्यय अधिक पड़ता है; जिससे किसानों को आर्थिक-दृष्टि से लाभ नहीं होता।

खलिहान

खलिहान को कहीं-कहीं पर फरवार भी कहते हैं। खलिहान में लक्ष्मी का वास रहता है। देहातों में खलिहान अधिकतर बागों में लगाया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि किसानों के खेत देहातों में बिखरे हुये होते हैं। इन बिखरे हुये खेतों से फ़सलों को काटकर किसान लोग बागों में एकत्रित करते हैं। खलिहान में होने वाले सारे कामों को करने के लिये देहात के बगीचे अधिक सुविधा-जनक होते हैं।

खलिहान बागों में इसलिये बनाये जाते हैं कि वहाँ पर मनुष्यों और जानवरों के लिये वृक्षों की छाया रहती है। दूसरे खलिहान में मनुष्यों और जानवरों के पानी पीने के लिये कूप का होना भी अति आवश्यक है। बागों में या उसके पास कूप अवश्य होते हैं। इसलिये बागों में किसानों के लिये खलिहान बनाना सुविधाजनक होता है।

जो लोग अधिक क्षेत्रफल में खेती करते हैं। जिसे आजकल फार्म कहा जाता है। उनके खलिहान अधिकतर ऐसी जगह पर बनाये जाते हैं, जो फार्म के बीच में हो। जहाँ पर फार्म का मालिक या प्रबन्धक रहता हो; जो खलिहान की देखभाल हर समय कर सके। फार्म पर बाग-

बगीचे न बनाकर खलिहान के पास कुछ छायादार वृक्षों को अवश्य लगा देना चाहिये। इन छायादार वृक्षों के नीचे मनुष्य तथा जानवर कुछ देर बैठकर आराम कर सकते हैं। वृक्ष के अलावा खलिहान के पास कूप या किसी प्रकार का जलाशय होना बहुत ही ज़रूरी है, जिससे खलिहान में काम करने वाले मज़दूरों और पशुओं को जल आवश्यकतानुसार प्राप्त होता रहे।

देहातों में आजकल आपस में वैमनस्य के भाव पाए जाते हैं। अधिकतर आपस की शत्रुता के कारण एक दूसरे को हानि पहुँचाने के लिये लोग खलिहानों में आग लगा देते हैं, जिससे खलिहान की सारी फ़सल जलकर नष्ट हो जाती है, ऐसी अवस्था में बेचारा किसान भाग्य को कोसकर किसी तरह से सब्र कर लेता है। ऐसी दुर्घटनाओं के समय यदि खलिहान के पास में कूप या कोई जलाशय होता है, तो उससे आग के बुझाने में सहायता मिलती है। इसलिये खलिहान के पास छायादार वृक्षों तथा जलाशय का होना बहुत ही आवश्यक है।

बाग़ों में गाँवों के सभी किसान खलिहान लगाते हैं। अपनी आवश्यकता के अनुसार लोग बाग़ की भूमि को खलिहान के काम में इस्तेमाल करते हैं, किन्तु चकबन्दी के फार्मों पर खलिहान का क्षेत्रफल एक एकड़ से कम न होना चाहिये। फार्म के क्षेत्रफल के अनुसार खलिहान का क्षेत्रफल एक एकड़ से अधिक बढ़ाया भी जा सकता है। खलिहान अधिकतर चौकोर होना चाहिये। खलिहान की भूमि समतल तथा दोमट होने से अनेकों लाभ है। जिनमें से

मुख्य लाभ तो यह है कि भूमि के दोमट होने से मिट्टी में गर्द बहुत ही कम पैदा होगी, जिससे फसलों का भूसा तथा दाना खराब न हो सकेगा।

सरकारी फार्मों पर तथा अन्यान्य बड़े-बड़े जमींदारों के यहाँ खलिहान की फ़र्श पक्की भी बना लेते हैं। फ़र्श पक्की बनाने में एक बार खर्च तो अधिक पड़ता है, किन्तु खलिहान कुछ दिनों के लिये स्थायी तथा लाभदायक हो जाता है। पक्के खलिहान कंकड़ पत्थर की गिट्टी तथा सिमेन्ट और बालू द्वारा बनाये जाते हैं। जो लोग पूरा खलिहान पक्का नहीं बना सकते, वह लोग थोड़ा सा भाग खलिहान का पक्का बना लेते हैं। यह भाग प्रायः गोलाकार होता है; इस खलिहान के पक्के गोलाकार भाग पर फसलों की मड़ाई करने पर फसलों की कोई हानि नहीं होती; मड़ा हुआ दाना तथा भूसा सुरक्षित रहता है। जिससे फसलों की आय का अनुभव ठीक-ठीक किया जा सकता है। जिन लोगों के पास पैसा हो साथ ही साथ अधिक क्षेत्रफल में चकबन्दी में खेती करते हों, उन्हें पक्का खलिहान अवश्य बना लेना चाहिये।

खलिहान की सफ़ाई

साधारण किसानों को अपने बगीचे तथा खेत के खलिहान को फ़सलों की कटाई करने के पहिले भली प्रकार से साफ़ कर लेना चाहिये, सफ़ाई करने के लिये सबसे पहिले फावड़े से खलिहान की मिट्टी समतल करके खलिहान के गड्ढों तथा चूहे की बिलों इत्यादि

को भली प्रकार से मिट्टी तथा कंकड़-पत्थर के रोड़ों से भर देना चाहिये।

खलिहान की भूमि अधिकतर क्वार-कार्तिक के महीने में ठीक की जाती है, क्योंकि इस महीने में ख़रीफ़ की फ़सलें कट कटकर खलिहान में आने के लिये खेतों में पकी तैयार खड़ी रहती हैं। क्वार कार्तिक में वर्षा समाप्त हो जाती है। इसलिये खलिहान की भूमि को फावड़े से समतल करने के बाद खुरपे द्वारा खलिहान की घास मज़दूरों से छिलवाकर खलिहान साफ़ करवा लेना चाहिये। जब खलिहान में भूमि की समतलता तथा घास की छिलाई हो जाय तो कच्चे खलिहान को पशुओं के गोबर द्वारा पानी की सहायता से मज़दूरों द्वारा भली प्रकार से लिपवा डालना चाहिये; जब खलिहान लिप जाय तो उसे दो-चार दिन सूखने के लिये छोड़ देना चाहिये। इस बीच में खलिहान के चारों ओर बाँस का बाड़ा लगा देना चाहिये। जिसमें एक तरफ़ से मनुष्यों तथा पशुओं के आने का मार्ग हो, शेष तीनों तरफ़ से खलिहान बाँस के बाड़े से घिरा हुआ हो। ऐसा करने से रात तथा दिन में भी गाँव के छुटे हुये मवेशी, बनैले पशु तथा चोर सरलता से खलिहान में घुसकर हानि न पहुँचा सकेंगे। उपर्युक्त रीति से जब खलिहान ठीक हो जाय—तो खलिहान में फ़सलों को इकट्ठा करने का काम आरम्भ कर देना चाहिये। ख़रीफ़ की फ़सलों में से कुछ फ़सलें तो वर्षा काल में ही पककर तैयार हो जाती हैं; जिनके लिये खलिहान का उपयोग तो कठिन हो जाता है। उन फ़सलों में से साँवा, काकुन, मडुआ, भदैला, (जल्द पकने वाला

उर्द) तथा शीघ्र पकने वाली मूँग की फसलों की गणना की जा सकती है। ऐसी फसलों को किसान लोग थोड़े क्षेत्रफल में अपनी आवश्यकतानुसार बोते हैं; यह फसलें भादों में पककर तैयार हो जाती हैं। इन फसलों को काटकर वर्षाकाल में फूस के छप्परों में रखकर इनका दाना अलग कर लिया जाता है; इनका हरा डंठल गंड़ासे से काट कर हरे चारे के रूप में पशुओं को खिला दिया जाता है। अधिकतर इन फसलों के लिये खलिहान वर्षाकाल में काम नहीं देते। हाँ, जिन लोगों के खलिहान की फर्श पक्की होती है; जिसका ढाल ऐसा होता है कि वर्षा का पानी बरस कर बह जाता है; उस समय में आसमान के खुल जाने पर जब धूप निकल आती है -- तो ऐसी फसलें थोड़ी-थोड़ी काटकर खलिहान में जमाकर ली जाती हैं। ऐसी फसलों को काटकर उसी खलिहान में इनका अन्न अलग कर लिया जाता है। हरे चारे की कुट्टी उसी समय बनाकर पशुओं को खिला दी जाती है। इस प्रकार की फसलें यदि दो-चार दिन भी खलिहान में या फूस के छप्परों के नीचे पड़ी रहती हैं --तो फसलों के सड़ जाने का भय रहता है। इसलिये जो फसलें भादों में पक जाती हैं, उनसे दाना और चारा काटकर तुरन्त अलग-अलग खलिहान में करने से ही लाभ हो सकता है, अन्यथा देर करने से हानि की संभावना है।

जो फसलें खरीफ़ में क्वार-कातिक में पकती हैं। उनमें से ज्वार, बाजरा, तिल, उरद, मूंग, धान इत्यादि की फसलें मुख्य हैं। जिनकी

कटाई करने के पश्चात उन्हें खलिहान में एकत्रित करना पड़ता है। जब ऐसी फसलों की कटाई मज़दूरों द्वारा पूरे ग्राम में सब किसानों की कटकर, अपने-अपने खलिहान में जमा हो जाती तो उसके पश्चात इन फसलों से दाना तथा करबी अलहदा की जाती है। खरीफ की इन फसलों से दाना, भूसा, करबी पुआल अलग करने में लगभग एक मास लग जाता है। खरीफ की ऐसी फसलों का दाना-भूसा अलग करने में अगहन मास समाप्त हो जाता है। एक महीने तक खरीफ की फसलों से अन्न तथा भूसा, करबी प्राप्त करने में खलिहान में काम होता रहता है।

खरीफ की कुछ फसलें तो ऐसी हैं, जिनके बंडल भूमि में एकत्रित किये जाते हैं, जैसे धान, तिल, ज्वार, बाजरा, उरद, मूंग इत्यादि। कुछ फसलें ऐसी हैं, जिनके पौदे लम्बे होते हैं। इनको खड़ा करके रखना पड़ता है। जिन फसलों के बंडल खलिहान में रक्खे जा सकते हैं, उन्हें खलिहान में एक स्थान में एकत्रित कर देना चाहिये। उसके पास में पर्याप्त दूरी देकर दूसरी फसलें रखना चाहिये। किन्तु जिन फसलों के बंडल खड़े करके रक्खे जाते हैं। उनको रखने के लिये खलिहान में एक क़तार में दस-दस फीट की दूरी पर आवश्यकतानुसार बाँस के तथा बल्ली के दस फीट लम्बे ८ १० खम्भे गाड़ देना चाहिये। इन खम्भों को ज़मीन में गहडालों से मिट्टी खोदकर कुछ गहराई तक मज़बूती से गाड़ना निहायत ज़रूरी है। जिससे फसलों के बंडल इनके चारों ओर आसानी से रक्खे जा सकें।

ऐसे खम्भों के सहारे ज्वार-बाजरे की फसलों के बंडल खम्भे के चारों ओर रक्खे जा सकते हैं। इन खम्भों के चारों ओर सौ से लेकर चार सौ बंडल तक रखना उपयुक्त होगा। अथवा जहां पर सोरहठा की रीति से मजदूर लोग ज्वार-बाजरे की कटाई करते हैं; वहां पर एक-एक मजदूर को एक-एक खम्भा बंडलों को रखने के लिये नियत कर देना चाहिये। इस रीति से रखवाने में बंडलों की गणना भी आसानी से खलिहान में की जा सकती है। साथ ही साथ मजदूरों के ऊपर शासन भी उचित रूप से हो सकता है। जिससे मजदूरों में आपस में किसी प्रकार का असंतोष न होगा और किसी प्रकार की गड़बड़ी भी न फैलेगी। इस रीति से जब ज्वार-बाजरे के बंडल खलिहान में एकत्रित हो जायँ तो इनकी बालियों पर धान का पुआल छुड़वा कर ढक देना चाहिये। नहीं तो इनके भुट्टे तथा बालियों के दानों को चिड़ियाँ बैठकर चुग जायेंगी। ऐसी रीति से बंडलों को न रखने पर खलिहान में चिड़ियों द्वारा अधिक हानि होती है। इसलिये ज्वार-बाजरे की बालियों तथा भुट्टों को खलिहान में पुआल, टाट तथा उरद, मूंग के कूटे से ढकना अतीव आवश्यक है। वरना हानि अधिक होगी।

जब फसलें खलिहान में जमा हो जायं--तो फसलों से अन्न अलग करने के लिये एक-एक फसल की मड़ाई-दवांई करना आवश्यक है। खरीफ की फसलें वर्षाकाल के पश्चात और जाड़े के आरम्भ में तैयार होती हैं। इसलिये इनके पौदे तथा बालियां

अधिकतर नम होती हैं। ऐसी अवस्था में धान, तिल, उरद मूग के बंडलों को खोलकर पहिले धूप में सुखाना पड़ता है। जब फ़सल के डंठल तथा अन्न सूख जाते हैं। तब इन फसलों से मड़ाई-दवाँई करके दाना, भूसा, पैरा, करबी अलग की जाती है। इसलिये इनके बंडलों को खोलकर सुखाने के लिये खलिहान में पर्याप्त भूमि की आवश्यकता होती है। जिन फसलों के डंठल अधिक नम हों उन्हें खलिहान मे काटने के दूसरे दिन से ही सुखाना आरंभ करना चाहिये; नहीं तो फसल के डंठल और अन्न में भुकुड़ी लग जायगी और इससे अधिक हानि होगी।

खरीफ़ की फ़सलों मे मूगफली की खुदाई करने पर यदि मूंगफली की फलियों को धूप में न सुखाया जाय—तो फलियों में फफूँदीं लग जाती है, जिससे मूगफली के दाने खराब हो जाते है। इसलिये नम फ़सलों को खलिहान में सुखाना आवश्यक है।

जिस प्रकार से खरीफ़ की फ़सल को खलिहान में रखने के लिये उक्त रीतियाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपयुक्त हैं। उसी प्रकार से रबी की फ़सलें जब फाल्गुन मास में पककर तैयार हो जाती हैं तो फाल्गुन-चैत्र में इनकी कटाई आरम्भ की जाती हैं। खरीफ़ की फसलों के समान रबी की फ़सलों के पौदे नम नहीं रहते। केवल अरहर तथा कुसुम के कुछ पौदे नम रहते है। शेष रबी की फ़सलों के पौदे फाल्गुन की पछिवाँ हवा के कारण खेत में ही भली प्रकार से सूख जाते हैं; तब इनकी कटाई आरम्भ की जाती है।

रबी की फ़सलों की कटाई के पहिले – खरीफ़ में इस्तेमाल किये गये खलिहान को पुनः एक बार साफ़ करके लीपना पड़ता है। तब इस खलिहान में रबी की फ़सलें एकत्रित की जाती है। रबी में सबसे पहिले मटर तथा सरसों की फसल तैयार होती है। इन फसलों को खेत से काटकर खलिहान में एकत्रित करते हैं यदि किसानों के खेतों में सरसों तथा मटर की कई क़िस्में हों तो इन क़िस्मों को पर्याप्त दूरी पर खलिहान में अलग-अलग रखना चाहिये। यदि एक ही जाति की हों तो सब को एक स्थान पर इकट्ठा कर देना चाहिये।

इसी प्रकार से जव, गेहूँ, चना, अलसी इत्यादि की फसलों की कटाई करके खलिहान में एक जाति की फसल एक स्थान मे एकत्रित करना अतीव आवश्यक है। वरना एक जाति की फ़सल के बीज दूसरी जाति के फ़सलों की बीजों मे मिल जाने से फसलो के बीज मिलवाँ और अशुद्ध हो जायँगे। यदि किसी किसान ने गेहूँ की कई क़िस्में––या किसी चकबन्दी के फार्म पर गेहूँ की उन्नति प्राप्त जातियाँ नं० ४, १२, ५२ तथा देशी गेहूँ भी बोया गया हो तो उन्हें काटकर खलिहान में पर्याप्त दूरी पर एकत्रित करना चाहिये, नहीं तो एक जाति के गेहूँ का बीज दूसरी जाति के गेहूँ के बीज में मिलकर मिलवाँ हो जायगा।

इसी रीति से जव तथा चना की फ़सलें भी खलिहान में अलग-अलग पर्याप्त फ़ासिले पर रखना आवश्यक है, यदि फार्म में उन्नति-प्राप्त जव तथा देशी जव इसी प्रकार से ऐसा चना

नं० २५ तथा ५८ अथवा क़ाबुली चने की क़िस्में भी बोई गई हैं—तो उन्हें खेत में काटकर खलिहान में सावधानी से काफ़ी फ़ासिले पर रखना उचित होगा। यदि खलिहान में ज़रा सी भी असावधानी हुई तो फ़सलों के बीज मिलकर अशुद्ध हो जायेंगे।

जिस प्रकार से रबी की सभी फ़सलों के लिये कटाई के बाद खलिहान में रखते समय सावधानी की आवश्यकता है। उसी प्रकार से अरहर, कुसुम इत्यादि फ़सलों को भी यदि इनकी कई क़िस्में फ़ार्म में या किसानों के यहाँ बोई हों तो काटकर खलिहान में अलग-अलग सावधानी से रखना चाहिये। खलिहान की सावधानी पर ही फ़सलों के बीजों की शुद्धता निर्भर है।

जिन बातों पर रबी तथा खरीफ़ की फ़सलों के बीजों की शुद्धता खलिहान में मौलिक रूप में सुरक्षित रह सकती है। उन बातों पर विस्तार रूप से विचार प्रकट किया गया है। अतिरिक्त इन बातों के अन्यान्य दुर्घटनाएँ भी खलिहान में ऋतुओं के अनुसार उपस्थित हो जाती हैं। उस समय में मौक़े को देखकर अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करके स्वयं फ़सलों की रक्षा करना चाहिये। क्योंकि खेत से फ़सलों को लाकर जब खलिहान में जमा किया जाता है। तब फ़सलों का ख़ज़ाना खलिहान में जमा हो जाता है। धन-धान्य के इस ख़ज़ाने की खलिहान में रक्षा करना तथा उसे शुद्ध रखना, जिससे अगली फ़सल भी शुद्ध रहे, खलिहान के कार्यकर्त्ता की योग्यता पर निर्भर है।

देहातों में जब खलिहान में फ़सल आ जाती है- तो हरेक किसान बागों में अपने-अपने खलिहान में रात को सोते हैं। हरेक बाग़ में लगभग आठ-दस किसानों का खलिहान लगाया जाता है। पहिले किसानों में सुमति थी। खलिहानों में रात के समय गाना बजाना होता था, जिससे देहातों में आनन्द-पूर्वक आमोद-प्रमोद में जीवन व्यतीत होता था।

वर्तमानकाल में किसानों में आपस में फूट होने के कारण देहातों में खलिहान में आग लगाकर एक दूसरे का धन-धान्य नष्ट किया करते हैं। इन कुप्रथाओं को बन्द करके ग्रामों में सहयोग-समितियों की स्थापना द्वारा सुमति पैदा करना चाहिये, जिससे खलिहान में किसानों को आमोद-प्रमोद का जीवन बिताने का अवसर मिले।

गाँवों के शरारती बालक खलिहान की फसलों को उठाकर ग्रामों की होली में डालकर जला देते हैं; जिससे किसानों को आर्थिक-दृष्टि से हानि पहुँचती है। यदि खलिहान एकत्रित करने वालों में सहयोग हो तो खलिहान में जो-जो हानियाँ उक्त-रीतियों से होती हैं: वह आपस के सहयोग से दूर की जा सकती हैं।

मड़ाई

खलिहान में फ़सलों को कटकर एकत्रित हो जाने के बाद मड़ाई-दवाँई का काम आरम्भ हो जाता है। मड़ाई का काम अधिकतर बैलों से ही लिया जाता है। किन्तु ख़रीफ़ तथा रबी में उत्पन्न होने वाली कुछ ऐसी भी फ़सलें हैं, जिनका भूसा-दाना अन्य रीतियों से भी अलग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर ख़रीफ़ में धान की फ़सल का क्षेत्रफल अन्य फ़सलों से अधिक होता है। धान का बीज निकालने के लिये खलिहान में चारपाई का प्रयोग करते हैं। चारपाई या लकड़ी का कोई मोटा भाग खलिहान में रखकर उसपर धान के पौदों को हाथ में लेकर झटकते हैं। जिससे धान का अंश पौदे से अलग होकर गिर जाता है। इस रीति से धान और पुआल अलग हो जाता है। बाद में धान को खलिहान में फैलाकर माँड़ते हैं; इस रीति से झटक कर तथा बैलों से मड़ाई करके धान की फ़सल का पुआल तथा दाना अलग किया जाता है। क्वारी धान प्रायः बैलों से माँड़ा जाता है; अगहनी धान हाथ से झटक कर खलिहान में फ़सल तैयार की जाती है। इसी प्रकार से ख़रीफ़ की अन्यान्य फ़सलें भी खलिहान में अन्यान्य रीतियों से माँड़ी-दायीं जाती हैं।

ज्वार-बाजरे की बालियाँ पहिले हँसियों से पौदों से करपी जाती हैं, बाद में इनकी बालियों पर बैलों की दाँय चलाकर मड़ाई

की जाती है। मड़ाई करने पर जब ज्वार-बाजरे की बालियों से दाना और खुलुरा अलग हो जाता है—तो उसे हवा में ओसाकर दाना साफ़ किया जाता है।

मक्के के भुट्टों को लकड़ी के पिटनों से पीटकर खलिहान में दाना अलग करते हैं। इस रीति के अतिरिक्त मक्के के भुट्टे से दाना अलग करने के लिये मशीनों का भी प्रयोग अजकल आरम्भ हो गया है। खरीफ़ की कुछ फ़सलों की तो मड़ाई की जाती है जैसे उरद, मूँग इत्यादि। इसके अतिरिक्त कुछ फ़सलों से अन्य रीतियों से दाना-भूसा अलग किया जाता है।

रबी की फ़सलों में मड़ाई का काम खलिहान में विशेष रूप से किया जाता है, इसका प्रधान कारण यह है कि रबी में गेहूँ, जव चना, मटर, सरसों इत्यादि की फ़सलों को माड़कर उनका दाना अलग करने के बाद उनका भूसा भी इतना महीन बनाया जाता है, जिसे पशु अच्छी तरह से खा सकें। यह बात खरीफ़ की फ़सलों के सम्बन्ध में नहीं पाई जाती। क्योंकि ज्वार-बाजरे की करबी को हाथ से लोहे की गड़ासों द्वारा कुट्टी बनाकर खिलाया जाता है। कुट्टी बनाने के लिये आजकल तो मशीनों का भी रवाज़ प्रचलित हो गया है।

भूसे के उपयोग के कारण खलिहान में रबी की सारी फ़सलों की मड़ाई बैलों की दाँय चलाकर की जाती है। खलिहान में गेहूँ के बंडलों को खोलकर गोलाई में फैला दिया जाता है। गोलाई में फैले हुये गेहूँ के बंडलों को 'पैर' कहते हैं। एक पैर में लगभग सौ बंडल

गेहुँओं का माँड़ा जा सकता है। 'पैर' की मोटाई किसानों के बंडलों पर निर्भर है, यदि किसी किसान के यहाँ थोड़े ही क्षेत्रफल में गेहूँ या जव बोया गया था तो उसकी पैर छोटी होगी।

गोलाई में बनी हुई इस पैर पर बैलों की दाँय चलाई जाती है। बैलों की दाँय में दो बैल से लेकर आठ बैल तक जोड़े जाते हैं। इन बैलों को चलाने के लिये एक आदमी की आवश्यकता होती है; यह आदमी रस्सी से सब बैलों को जोड़कर बैलों को पैर पर चलाता है, बैलों की दाँय चलाकर फ़सलों की मड़ाई की जाती है। उक्त रीति से मड़ाई करने के लिये एक आदमी की और आवश्यकता होती है—जो पैर पर जव या गेहूँ के बंडलों को खोल-खोलकर फैलाता जाता है। इस रीति से पैर बनाने में दो आदमियों की आवश्यकता हुआ करती है। जब बैलों द्वारा मड़ाई की जाती है—तो बैलों के मुँह में खोंच लगा दी जाती है। जिससे वह आसानी से मड़ाई करें। यह खोंच सनई के रेशे से बनाई जाती है। जब कभी खोंच बैलों के मुँह में नहीं लगी रहती तो बैल पैर पर फैले हुए नाज के डंठलों को खाने में लग जाते हैं; जिससे अन्न की हानि होती है। दूसरे दाँय चलाकर मड़ाई करने वाला आदमी भी बैलों को हाँकने में परेशान रह जाता है। इसलिये मड़ाई करते समय खोंच लगाकर बैलों को चलाने का रवाज़ बहुत सी जगहों में प्रचलित है।

कुछ स्थानों के किसान बैलों के मुँह में मड़ाई के समय खोंच का व्यवहार नहीं करते, आरम्भ में बैलों द्वारा दो-चार दिन तक

पैर पर अन्न की विशेष रूप में हानि होती है, किन्तु जब पैर का अन्न खाने-खाते उनकी तबीयत भर जाती है—तो बैलों द्वारा हानि बहुत ही कम होती है। ऐसी अवस्था में दाँय चलाने वाले को बाद में परिश्रम भी अधिक नहीं करना पड़ता। पैर पर बिना खोंच दिये हुये जब जानवर चलाये जाते हैं तो ऐसी अवस्था में पैर पर अन्न-भूसा खूब खाते हैं—तो इस ऋतु में वह मोटे-ताजे भी हो जाते हैं। ऐसा प्राय: वही किसान करते हैं, जो प्रति दिन अपने जानवरों को दाना तथा खली चूनी नहीं देते। जो लोग रोज़ाना अपने जानवरों को रातिब देते हैं; उन्हें खोंच लगा करके ही बैलों की दाँय चलाना लाभप्रद है। बिना खोंच लगाये बैलों की दाँय चलाने से दाने की जो हानि होती है; उसका अनुभव पैदावार की दृष्टि से नहीं किया जा सकता। क्योंकि वर्तमान काल में इस बात का अनुभव करना भी आवश्यक है कि प्रति एकड़ खेती में क्या ख़र्च पड़ा—और आय कितनी हुई; ख़र्च निकालने पर लाभ क्या बचा।

लाभ का पता लगाने के लिये दाँय चलाने के समय बैलों के मुख में खोंच का लगाना अतीव आवश्यक है। जब खलिहान में पैर बनाई जाय तथा बैलों की दाँय चलती रहे। तो इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि पैर के दाने छिटक कर दूसरी जाति के रखे हुये फ़सलों की लांक में न मिल जायँ। नहीं तो फ़सलों के बीज अशुद्ध हो जायँगे। बीजों की शुद्धता पर मड़ाई के समय विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है।

रबी की फ़सलों की मड़ाई के लिये वैज्ञानिक रीति से लोहे के
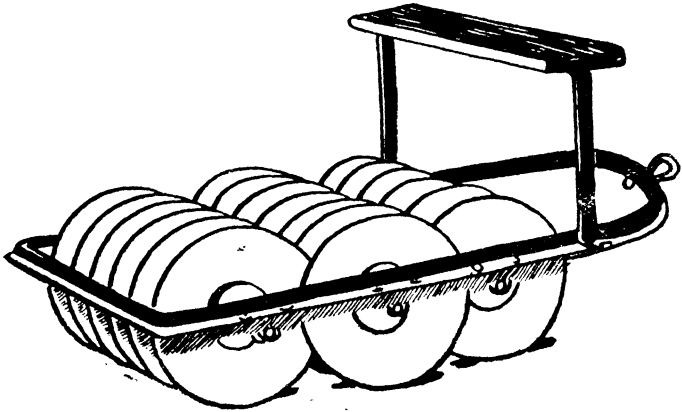
चित्र नं० १०
आलपाड थ्रेशर

कई एक यन्त्र बनाये गये हैं। इनमें से इस यन्त्र का नाम आलपाड थ्रेशर है। यह यन्त्र एक जोड़ी बैल से एक आदमी द्वारा चलाया जाता है। दाँय चलाने वाले आदमी इसका व्यवहार आसानी से कर सकते हैं।

जिस दाँय को चलाने के लिये कई बैलों की आवश्यकता होती है, उस दाँय को इस यन्त्र द्वारा दो बैल चलाकर छः बैल का काम कर सकते हैं। इस यन्त्र का दाम लगभग ४५) है। इस यन्त्र के प्रयोग से गेहूँ, जव तथा रबी की अन्यान्य फ़सलों की मड़ाई की जा सकती है, इस यन्त्र के प्रयोग से भूसा भी

महीन हो जाता है: नांक भी शीघ्र टूट जाती है। इसलिये मड़ाई के लिये ऐसे यन्त्रों का प्रयोग वर्तमान काल में आवश्यक है।

बहुत सी ऐसी भी मड़ाई करने की मशीनें हैं--जो इञ्जन तथा विद्युत द्वारा भी चलाई जाती हैं। जिनमें रबी की फसलों द्वारा दाना तो अलग कर लिया जाता है। किन्तु नांक का भूसा नहीं बनता। भूसा बनाने के लिये दाँय चलाना बाद में आवश्यक हो जाता है। ऐसी मशीनों का प्रयोग अधिक क्षेत्रफल में खेती करने वाले लोगों के लिये लाभप्रद है। किन्तु जो लोग थोड़े क्षेत्रफल में खेती करते हैं, उन्हें "आलपाड थ्रेशर" का प्रयोग करना आवश्यक है। सहयोग-समितियों की सहायता से यह यन्त्र खरीदे तथा प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

जिस समय मड़ाई की जाती है, उस समय जब, गेहूँ के डंठल दबकर महीने होते जाते हैं, जिससे थोड़ी देर में पैर बहुत ही मोटी हो जाती है, दोपहर तक मड़ाई करने के बाद- जब बैलों को सुस्ताने या खाने के लिये पशुशाले में बाँध दिया जाता है--तो पैर को लकड़ी के एक औज़ार द्वारा उलट-पलट दिया जाता है। लकड़ी के जिस यन्त्र द्वारा यह काम किया जाता है: उसे 'पाँचा' कहते हैं।

यह 'पाँचा' लकड़ी से देहातों में लुहारों द्वारा बनवाया जाता है। पैर को उलटने-पलटने के लिये 'पाँचे' का प्रयोग अतीव आवश्यक है। लगभग तीन फीट से लेकर पाँच फ़ीट लम्बी लकड़ी लेकर उसमें लकड़ी के पाँच दाँत लगा दिये जाते हैं। इसमें एक लकड़ी

हाथ से पकड़ने के लिये लगाई जाती है; हाथ से पकड़ कर पाँचे द्वारा पैर की मड़ी हुई सारी फ़सल उलट-पलट कर बराबर दाँयी-माड़ी जाती है। एक पैर को उलटने-पलटने के लिये ४-५ बार पाँचे का प्रयोग किया जाता है। सौ बंडलों की एक पैर चार-पाँच दिन में मड़कर इस योग्य हो जाती है कि वह हवा में ओसाई जा सके। इस रीति से खलिहान में नवीन वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से बैलों द्वारा दाँय चलाकर रबी की फ़सलों से दाना-भूसा अलग करना चाहिये।

जब खलिहान में मड़ाई नवीन तथा प्राचीन किसी भी रीति से होती रहे उस समय में बीजों की शुद्धता पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। जब भूसा महीन हो जाय—तो पैर को पाँचे की सहायता से एकत्रित करके इकट्ठा कर लेना चाहिये। जब पैर की राशि एकत्रित हो जाय तो उसे हवा में उड़ाकर दाना भूसा अलग कर लेना चाहिये। कभी-कभी खलिहान में मड़ाई के बाद जब राशि तैयार हो जाती है—तो कभी कभी पश्चिमी हवा ठीक रीति से नहीं चलती रहती जिससे फ़सलों की ओसाई नहीं हो पाती, ऐसी अवस्था में पैर को एकत्रित करके छाप देते हैं। इस रीति से तैयार फ़सल को मज़दूरों द्वारा अधिक हानि पहुँचाई जाती है। इसलिये तैयार राशि पर जब वह ओसाई न जा सके तो रात में सोना आवश्यक है।

कभी-कभी तैयार राशि के ओसाने के पहिले खलिहान में पानी भी बरस जाता है, जिससे मड़ी हुई राशि का दाना और भूसा पीला पड़ जाता है। ऐसे अवसर पर पानी के बरस जाने के बाद

यदि आसमान खुल जाय तथा धूप निकल आवे तो मड़ी हुई गेहूँ या जव की राश का ऊपरी भाग जो पानी से भीग गया हो सावधानी से अलग करके खलिहान में सूखने के लिये फैला देना चाहिये।

पानी जो ऐसे मौक़े पर बरसा करता है उससे हानि अधिक होती है। किन्तु जो चतुर किसान होते हैं और फ़सलों की मड़ाई करके उसे ठीक रीति से एकत्रित करके छाप देते हैं, उससे पानी बरस कर ऊपर से ही अपने आप बह जाता है। लगभग दो इञ्च के पानी राशि के भीतर रिभता है। शेष राशि सूखी रहती है। मड़ी हुई फ़सल यदि पानी से भिगकर खराब हो जाय तो मौक़े पर सावधानी से काम लेकर खलिहान में ऐसे उपचार करने चाहिये: जिससे अन्न तथा भूसे की हानि न हो।

मड़ाई का काम उक्त रीतियों से जब खलिहान में समाप्त हो जाता है--तो फ़सलों की ओसाई का काम आरम्भ होता है। फ़सलों की मड़ाई के समान ही ओसाई का विषय भी एक स्वतन्त्र विषय है। उसका वर्णन आगे किया जायगा। इस स्थान पर मड़ाई के सम्बन्ध में इतना और बतलाना बहुत ज़रूरी है कि खरीफ़ तथा रबी की जिन फ़सलों की मड़ाई बैलों की दाँय चलाकर की जाती है, उनका खर्च निकालना भी आवश्यक है, जिससे मड़ाई द्वारा खर्च का अनुमान किया जा सके।

एक पैर जिसमें गेहूँ तथा जव के सौ बंडल माँड़े जाते हैं उसमें लगभग २५ मन गेहूँ माँड़ा जाता है। लगभग ५० मन

भूसा तैयार होता है। दो आदमी पांच दिन तक रोज़ाना काम करते हैं- ।।) के हिसाब से २।।) मज़दूरों की मज़दूरी होती है। छः बैल पांच दिन तक प्रति दिन काम करते हैं। इस रीति से लगभग दस रुपये के बैलों की ख़ुराक़ भी हो जाती है। मँड़ाई में भी २५ मन अन्न तथा ५० मन भूसा तैयार करने में कम से कम १०) अधिक से अधिक १५) खर्च पड़ जाता है. किसान यह काम अपने हाथ से करता है।

फ़सलों की ओसाई

मड़ाई के बाद फ़सलों की ओसाई का काम खलिहान में आरंभ होता है। मड़ी हुई फ़सल से दाना-भूसा अलग करने के लिये फ़सलों को हवा में उड़ाने के काम को फ़सलों का ओसाना कहते हैं, इसी काम को ओसाई भी कहते हैं। खरीफ़ और रबी की फ़सलों को ओसाने में पछिवाँ हवा से काम लिया जाता है। रबी की फ़सलों को ओसाने के लिये चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ में पछिवाँ हवा बराबर चलती रहती है। किन्तु खरीफ़ की मड़ी हुई फ़सलों को ओसाने के लिये कातिक अगहन में पछिवाँ हवा की कुछ कमी रहती है। ऐसी अवस्था में कभी-कभी कपड़ों की चादर द्वारा दो आदमी मिलकर हाथ से हवा करते हैं। कपड़े की चादर द्वारा कृत्रिम रीति से जो हवा निकाली जाती है, उससे थोड़ी-सी फ़सल ओसाई जा सकती है। पर्याप्त मात्रा में तैयार राशि का ढेर इस रीति से नहीं ओसाया जा सकता। इस रीति से फ़सलों के ओसाने का काम जिस प्रथा से किया जाता है उसे 'परौना' मारना कहते हैं। परौना मारकर अधिकतर बखार से निकाला हुआ बीज साफ़ किया जाता है। कभी-कभी रबी तथा खरीफ़ की भी फ़सलें इस रीति से ओसाई जाती हैं।

जब पछिवाँ हवा जोरों से चलती है,—तो तीन-चार आदमी अरहर के रहठे से बनी हुई पलरियों द्वारा मड़ी हुई राश को भर लेते

हैं, एक आदमी के पीछे दूसरा आदमी हाथ को अपने सिर के ऊपर करके धीरे-धीरे मड़ी हुई फ़सल को पल्ली से उड़ाता जाता है, इस रीति से भूसा उड़कर अलग हो जाता है, दाना वहीं पर गिरता जाता है। इस दाने के साथ फ़सलों के मड़े हुये छोटे-छोटे डंठल, गाँठें जो वज़न में भारी होती हैं, उड़कर भूसे के साथ दूर जाकर नहीं गिर सकते, वह भी दाने के साथ गिरकर मिले रहते हैं।

भूसे की इस गाँठ को एक आदमी सींक की बढ़नी से बैठकर दाने से अलग करता जाता है। इस रीति से मड़ी हुई सारी फ़सल को खलिहान में ओसा कर अलग कर लेते हैं। फ़सलों को ओसाने के लिये जब तेज़ हवा चलती रहती है—तो कुछ अन्य तदबीरें भी की जाती है, जिससे भूसे की हानि कम होती है; नहीं तो तेज़ हवा में दाने की सफ़ाई तो ठीक होती है, किन्तु भूसे के उड़ जाने से हानि अधिक होती है, इसलिये जहाँ मड़ी हुई राशि ओसाई जाती है, उसके पूरब तरफ़ फूस की टट्टियाँ या अरहर के बंडल रखे रहते हैं, जिससे ओसाने पर भूसा उड़कर ख़राब न हो जाय। जहाँ तक संभव हो एक जाति की फ़सलें माड़ कर एक साथ ओसाई जाँय तो फ़सलों की उपज मालूम हो जाती है। कई बार अलग-अलग ओसाने से खलिहान में सब बातों का पता एक मर्तबे के बजाय कई मर्तबे में ज्ञान होता है। जैसे मान लिया जाय कि हमारे पास गेहूँ पूसा नं० ४ तथा ५२ दोनों की फ़सलें खलिहान में काटकर रक्खी गई हैं—तो ऐसी अवस्था में गेहूँ पूसा नं० ४ की मड़ाई करके जितनी राशि तैयार हो सके, तैयार करके सब को एक साथ

ही ओसाकर खलिहान से उनका बीज हटाकर तथा खलिहान को साफ़ करके, तब दूसरी जाति के गेहूँ की मड़ाई तथा ओसाई करना चाहिये। यदि पूसा नं० ४ का गेहूँ पहिले माँड़ा गया है—तो उसकी मड़ाई और ओसाई को समाप्त करके तभी पूसा नं० ५२ के गेहूँ की मड़ाई-ओसाई करना आवश्यक है।

उक्त रीतियों से खलिहान में ख़रीफ़ तथा रबी की मड़ी हुई फ़सलों की ओसाई करके दाना भूसा अलग कर लेना चाहिये। हवा में उड़ाने के लिये नव सिखिया मज़दूरों को नहीं लगाना चाहिये। जो मज़दूर दो-चार वर्ष से ओसाई का काम कर चुके हैं, उन्हीं से मड़ी हुई फ़सलों को ओसवाना चाहिये; अन्यथा ओसाई के काम में गड़बड़ी होगी।

मड़ी हुई फ़सलों को ओसाने के लिये कुछ मशीनें भी आजकल वैज्ञानिक रीतियों से तैयार की गई हैं; जिनके द्वारा मड़ी हुई फ़सलें ओसाई जाती हैं।
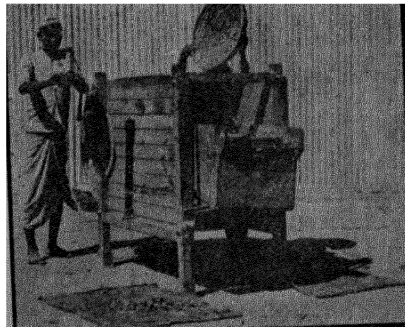
चित्र नं० ११
ओसाने की मशीन

जिन स्थानों में वैज्ञानिक रीतियों से अधिक क्षेत्रफल में फार्म—स्थापित करके खेती की जाती है। उन स्थानों में फ़सलों को जल्द से जल्द तैयार करने के लिये मड़ी हुई

फ़सलों को ओसाने के लिये पछिवाँ हवा का इन्तज़ार नहीं किया जाता। इन मशीनों के भीतर पंखे लगे रहते हैं। बाहर से जब इन मशीनों के पंखे चलाये जाते हैं--तो हवा पैदा होती है। इन मशीनों के भीतर जब मड़ी हुई फ़सल का दाना-भूसा डाला जाता है—तो वह पंखे की हवा के द्वारा साफ़ हो जाता है। मशीन से दाना अलग होकर एक किनारे गिरता है। इन मशीनों का प्रयोग उन गाँवों में जहाँ सहयोग-समितियों द्वारा चकबन्दी में खेती की जाती हो, किया जा सकता है। अधिकतर यह मशीनें छोटे-छोटे काश्तकारों के लिये कारआमद नहीं हो सकतीं।
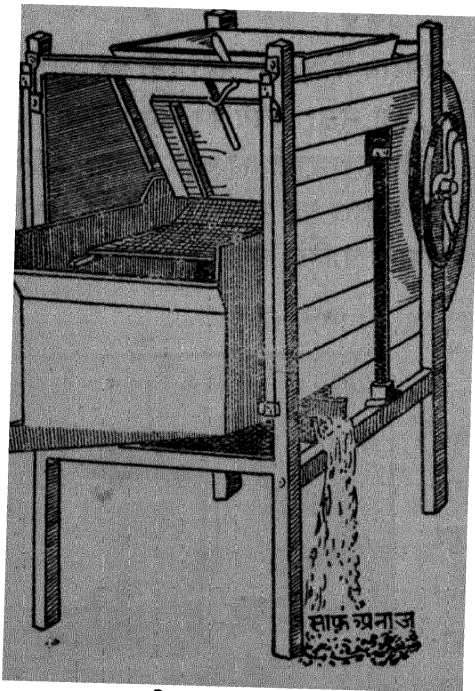
चित्र नं० १२

ओसाया हुआ साफ़ अन्न

जब एक बार फ़सलों को ओसाकर दान-भूसा अलग कर

लिया जाता है। तब दूसरी बार इस प्राप्त किये हुये दाने को पुनः वहीं पर ओसाकर उसमे से भूसे की गाँठें साफ़ करके अन्न को ठीक कर लेते हैं।

आजकल वैज्ञानिक रीतियों से जो मशीनें ओसाने के लिये तैयार की गई हैं; उनमें यन्त्रों की सहायता से अन्न का छोटा तथा बड़ा दाना भी अलग-अलग होता जाता है, किन्तु हवा से ओसाने से ऐसा नहीं होता। हवा में जो अन्न ओसाकर भूसे से अलग किया जाता है, उसका छोटा तथा बड़ा दाना अलग करने के लिये बीजों की सफ़ाई अलग से करनी पड़ती है।

मशीनों में खलिस बोई हुई फ़सलों का ही अन्न इस रीति से ओसाया जा सकता है। मिलवाँ बोई हुई फ़सलों के ओसाने के लिये हवा में ओसाना ही अधिक लाभप्रद है। जब फ़सलें ओसाकर तैयार कर ली जायँ तो उन्हें तौलकर खलिहान से उठाकर गोदाम में या घर में रखना चाहिये। इस रीति से सारी फ़सल खलिहान से माँड़-दाँय कर ओसाने के बाद गोदाम में रख लेना चाहिये।

गोदामों में बीज की सफ़ाई

जब खलिहान से फ़सलों से अन्न तैयार होकर गोदाम में आ जाता है तो उस समय में बीजों की सफ़ाई करना आवश्यक हो जाता है। अधिकतर लोग बीजों की सफ़ाई पर ध्यान नहीं देते जिससे बीज का दाम बाजारों में उचित रूप से नहीं मिलता। बीजों की सफ़ाई के लिये कई बातों पर विचार करना पड़ता है।

जैसे मान लीजिये कि फ़सल खलिहान से तैयार होकर तुलकर गोदाम में आ गई तो इस गेहूँ के अन्न में गेहूँ के छोटे-बड़े दाने गेहूँ की पाँखी तथा जव, चना के दाने इसी प्रकार से सरसों अलसी के भी दाने पाये जाते हैं।

जो फ़सलें बाग़ों के खलिहान में माँड़ी-दाँयी तथा ओसाई जाती हैं। उनमें मिट्टी, कंकड़ के रोड़े तथा सिटके भी पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त आम के बौर के भी कुछ भाग अन्न के ढेर में पाये जाते हैं, यदि इन सब चीज़ों की सफ़ाई न की जाय तो अन्न न तो बीज की ही दृष्टि से गोदामों में सुरक्षित रक्खा जा सकता है; न बाज़ारों में ऐसा अन्न अच्छे मूल्य पर बेंचा जा सकता है। इसलिये गोदाम या बखार में रखने के पहिले बीजों की सफ़ाई करना अति आवश्यक है। बीजों की सफ़ाई करने के लिये चलनों की तथा सूप की आवश्यकता पड़ती है। चलने प्रायः बाज़ार में बने बनाये भी बिकते हैं। अधिकतर चलनों को अपनी आवश्यकता के अनुसार लोहे की जालियाँ ख़रीद कर स्वयं बनवाना अधिक लाभप्रद होता है।

चलना

कुछ चलने तो इस दृष्टि से बनवाये जाते हैं, जिनमें से अन्न की गर्द तथा महीन अन्नों के दाने जैसे सरसों, अलसी के अन्न गिर जाते हैं। इस काम के लिये महीन जाली के चलनों की आवश्यकता होती है। कुछ चलनों की जाली इससे बड़ी होती है, जिसमें चालने से बड़ा दाना तो चलने में रह जाता है, छोटा

और महीन दाना नीचे गिर जाता है। इन चलनों द्वारा बीज साफ़ करने से उच्च श्रेणी का बीज अलग हो जाता है। जिसे बीज के लिये एकत्रित किया जाता है. या बीज के लिये बेच भी दिया जाता है। कुछ लोग ऐसे अन्न को जो बाज़ारों में बेचना चाहते हैं उन्हें मूल्य भी उचित रूप में मिलता है। इसलिये अन्न की सफ़ाई चलनों से अवश्य करना चाहिये।

कुछ फ़सलें मिलवाँ बोई जाती हैं। जैसे कहीं-कहीं गेहूँ में चना मिलाकर बोते हैं। इसी प्रकार से चने के साथ अलसी मिलाकर बोई जाती हैं। जव में मटर मिलाकर बोने का भी रवाज़ प्रचलित है। जब यह फ़सलें पककर खलिहान में कटकर आ जाती है तो इन फ़सलों की मड़ाई भी मिलाकर ही हो जाती है। ओसाने के पश्चात इन अन्नों को अलग-अलग करने के लिये चलने तथा सूप का प्रयोग करना पड़ता है।

इस रीति से चलने द्वारा चना में से अलसी अलग की जाती है। इसी प्रकार से गेहूँ से चना तथा जव से मटर अलग करते हैं। जब दाने अलग-अलग हो जाते हैं तो सूप की मदद से उन्हें साफ़ कर लेते हैं। सूप द्वारा थोड़ी मात्रा में अन्न साफ़ किया जाता है, चलने द्वारा अधिक मात्रा में अन्न साफ़ किया जाता है। सूप को प्रयोग करने के लिये अधिकतर औरतों से काम लिया जाता है। किन्तु चलने का प्रयोग मर्दों द्वारा भी होता है। इसलिये जहाँ जैसी आवश्यकता हो वहाँ पर उतनी संख्या में सूप तथा चलनों को ख़रीद कर रखना चाहिये।

चलने आकार प्रकार में छोटे-बड़े होते हैं, इनकी जातियाँ भी कई क़िस्म की होती हैं। जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न चीजें साफ़ की जाती हैं। गोदाम में हरेक प्रकार के चलने रखकर बीजों की सफ़ाई करना चाहिये, जब बीज साफ हो जाय तो उसे बराबर वज़न में बोरे में भरकर रखना चाहिये। अधिकतर अन्न एक बोरे में दो मन से लेकर ढाई मन तक आता है।

गेहूँ तथा चना-मटर रखने के लिये ढाई मन के बोरे बनाना ठीक है। जव के लिये दो मन का बोरा बनाना चाहिये, इस रीति से तैयार किये हुये अन्न को बेंचने के लिये या गोदाम में रखने के लिए बोरों में भरकर रखना चाहिये।

बीजों की सफ़ाई के पश्चात् जब बोरे बन्दी का काम गोदामों में समाप्त हो जाय तो फ़सलों का आय-व्यय भी रजिस्टर में दर्ज कर लेना चाहिये। जिससे पता चल जाय कि कितनी उपज किस खेत से किस अन्न की हुई।

अन्न की ख़रीद फरोख़्त

तैयार किए हुये अन्न को गोदाम से तुरन्त बेंचने का प्रबन्ध करना चाहिये; खेत तथा खलिहान से जो अन्न, गुड़, भूसा इत्यादि प्राप्त हो जाय उसे बेंचने से यदि अच्छा मूल्य मिलता हो तो आय की दृष्टि से बेंच डालना चाहिये।

देहातों में आजकल रोज़गार की कमी है, इसलिये खेती से जो अन्न, सामान किसानों द्वारा तैयार हों, उसे सहयोग-समितियों

द्वारा ख़रीद-फ़रोख्त करने से अधिक लाभ है। जो सहयोग समितियाँ इन अन्नों से उपयोगी पदार्थ बना सकें; उन्हें किसानों द्वारा उपयोगी पदार्थ बनवा कर ख़रीद फ़रोख्त करने से अधिक लाभ होगा।

उदाहरण के तौर पर तेल की फ़सलों से तेल निकाल करके तेल और खली का व्यापार। इसी प्रकार से दाल की फ़सलों से दाल बनाकर दाल तथा चूनी-भूसी का व्यापार करने से विशेष रूप से लाभ होगा। फ़सलों का क्रय-विक्रय देहाती अर्थशास्त्र का एक प्रधान विषय है। इसीपर किसानों की आर्थिक आय का दारो-मदार है। इसलिये इस विषय में सावधानी से काम लेना चाहिये। बहुत से किसान जो आर्थिक-कठिनाइयों में फँसे रहते हैं; जैसे ही उनका अन्न अथवा खेती की अन्यान्य वस्तुयें तैयार होकर घर आती हैं, वैसे ही गाँव के बनिए, ज़मींदारों के कारिन्दे तथा देशी महाजन अपना मतालबा वसूल करने लिए किसानों को घर घेर लेते हैं। ऐसी मुसीबत में फँसकर किसान अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए सस्ते दामों में अपनी खेती की उपज इन लोगों के हाथ मजबूरन बेंच देता है।

खेती की आय को उक्त रीतियों से बेंच देने के कारण किसानों को दो प्रकार से हानि होती है। पहिली हानि तो इस प्रकार से हुई कि जब फ़सल तैयार होती है, उस समय अधिकतर अर्थात बैशाख-ज्येष्ठ तथा कार्तिक-अगहन में बाज़ार भाव सस्ता रहता है। दूसरे जिनका मतालबा किसानों के ऊपर रहता है, वह लोग

बाज़ार भाव से भी सस्ता किसान से लेते हैं। ऐसी अवस्था में किसान को एक रुपये की उपज का केवल बारह आना ही प्राप्त होता है। ऐसी अवस्था में खेती की उपज से जो आय किसानों को होती है, वह उनके हाथ से सस्ते भावों निकल जाती है। न तो उस आय के बेचने से उन्हें इतना धन ही मिलता है, कि उनका ऋण सारा अदा हो जाय, जिससे वह ऋण मुक्त हो जायँ।

दूसरी हानि यह होती है कि किसान के पास सारी उपज के बिक जाने के बाद अगली फ़सल के बोने के लिए न तो बीज बचता है, न खाने के लिये अन्न। ऐसी अवस्था में वह कभी भी अपने खेती के व्यवसाय में उन्नति नहीं कर सकता।

सहयोगी-बीज भण्डार

देश तथा प्रान्त के किसानों की आर्थिक-कठिनाइयों को देखकर देश की सरकार ने देहातों में सहयोगी-समितियों के स्थापना की जो स्कीम प्रचलित की है, उस पर ध्यान देने से किसानों की आर्थिक समस्याएँ सुलभ सकती हैं। जिन ग्रामों के किसान अपने कृषि-व्यवसाय की उन्नति से अपनी आर्थिक-उन्नति करना चाहते हैं। उन्हें आपस के सहयोग से ग्रामों में सहयोग-समितियों की स्थापना करना चाहिए। ग्राम के सभी बालिग़ लोगों को इस सहयोग समिति का सदस्य बनकर ग्राम की कृषि में सुधार करने का प्रयत्न करना चाहिये।

ग्राम की कृषि सुधार के साथ ही साथ जो व्यवसाय ग्रामों में कृषि की उपज द्वारा प्राचीन काल से ही संचालित होते थे,

उनका उद्धार करके गाँव वालों की बेकारी दूर करना चाहिए। नए-नए व्यवसायों को जो हाथ से किये जा सकते हों, उनकी स्थापना करनी चाहिए।

उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि किसी ग्राम में कृषि-विभाग का उन्नति प्राप्त कपास का बीज बोया गया। इससे किसानों को उपज में अच्छी रुई प्राप्त हुई। इस रुई को किसानों को सीधे बनियों के हाथ बेंचने से अधिक लाभ न होगा। बल्कि इस रुई और बिनौले को सब कोई ग्राम में स्थापित सहयोगी-बीज भंडार में जमा कर दें। सहयोगी बीज भंडार उनकी वस्तुओं को जमा करके उनकी आवश्यकतानुसार उन्हें कुछ धन आरम्भ में देकर उनका काम चला देगा। बाद में सहयोग-विभाग द्वारा वह रुई अच्छे दामों में बेंचकर किसानों को हिसाब समझा दिया जायगा।

जिन ग्रामों में सहयोग-समितियों के अधिकारी व्यावसायिक क्षेत्रों में भी उन्नति करने के साधन ग्रामों में एकत्रित कर लिये होंगे, उन ग्रामों में उस कपास को ओटवा तथा धुनवा कर उन्हीं किसानों से उस कपास का सूत भी तैयार कराया जा सकता है। इस सूत को बेंचने से कपास की अपेक्षा अधिक आय होगी। यदि सूत द्वारा गाँवों में ही करघे द्वारा हाथ से कपड़ा बुनवाने का कार्य भी सहयोग-समितियों की सहायता से किसान लोग करने लगें तो उन्हें गाँवों में ही वस्त्र भी मिल जायगा। इस रीति से उन्हें विशेष रूप से आर्थिक लाभ होगा।

कपास के बाद जो बिनौला प्राप्त होता है, उसका तेल बनाकर उसके तेल तथा खली का व्यापार भी किया जा सकता है।

देहातों में ईख बोने के पश्चात् जब ईख की फ़सल तैयार होती है—तो जहाँ पर मिलें हैं, वहाँ पर तो गन्ना ठीक रीति से बिक जाता है, किन्तु जहाँ पर मिलें नहीं हैं, वहाँ पर किसानों को गुड़ बनाना पड़ता है। कभी-कभी गुड़ का भाव देश की राष्ट्रीय अर्थ-शास्त्र की नीति के अनुसार बहुत ही सस्ता हो जाता है जिससे किसानों को गन्ने की खेती से आय के बजाय हानि की सम्भावना हो जाती है। किसानों का यह गुड़ सस्ते भावों बिक कर बनियों के द्वारा देश के व्यापारियों के पास चला जाता है। बाद में यही गुड़ गलाकर मिलों में गुड़ से भी चीनी बनाई जाती है, जिसका मूल्य गुड़ की अपेक्षा अधिक मिलता है।

उक्त हानि से बचने के लिए देहाती अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से ग्रामों की सहयोग-समितियाँ प्रान्तीय गुड़ उन्नति विभाग की सहायता से उत्तम श्रेणी का गुड़ बनाकर तथा देशी रीति से चीनी, बूरा, मिश्री बनाकर गुड़ की अपेक्षा उसे सहयोगी बीज भंडारों-द्वारा अच्छे मूल्य पर बेंच सकती हैं। गन्ने द्वारा उक्त वस्तुओं को बनाने के लिये सहयोग-समितियों की स्थापना से किसानों को हरेक दृष्टि से लाभ पहुँच सकता है।

जिन ग्रामों में तेल की फ़सलों की खेती अधिक क्षेत्रफल में की जाती है, उन ग्रामों में तेलहन का बीज सीधे बनियों के हाथ बेंचने से किसानों को आर्थिक-लाभ नहीं हो सकता। यदि ग्रामों

में सहयोगी-बीज़-भण्डार क़ायम हो चुके हैं—तो वहाँ पर तेलहन की फ़सलों से तेल निकाल कर तेल तथा खली का व्यापार करने से किसानों को अधिक लाभ होगा।

ग्रामों में देशी कोल्हुओं द्वारा तेलहन की फ़सलों से तेल निकाला जा सकता है। इससे ग्राम के बहुत से लोगों को काम करने का मौक़ा मिलेगा। गाँव में तिल, मूँगफली, अण्डी, सरसों, तीसी, कुसुम आदि की खेती की जाती है। इनके बीजों को किसान लोग बनियों के हाथ बेंच देते हैं, तेल निकालने का कार्य्य उस ग्राम में न होकर अन्यान्य व्यावसायिक क्षेत्रों में होता है; जिससे किसान उसके लाभ से वंचित रह जाते हैं, तेल तथा खली का व्यवसाय ग्रामों का प्राचीन व्यवसाय है; उसका उद्धार करना तथा उसे सुधार कर पुनः संचालित करना अपनी तथा देश की आर्थिकावस्था का सुधार करना है। खली पशुओं को खिलाने के काम में आती है। दूसरे बहुत से तेलहन की खलियों का प्रयोग खाद के रूप में कृषि की उन्नति के लिये किया जाता है। इसलिये तेल तथा खली का व्यापार देहातों में सहयोग द्वारा करना आवश्यक है।

दाल की फ़सलों में से जो अरहर, उरद, मूंग, मसूर ग्रामों में खेती से पैदा होती हैं। उसे किसान लोग सीधे बनियों के हाथ बेंचकर अपना काम चलाते हैं। यदि ग्राम वासी सहयोगी बीज भण्डारों की सहायता से दालें तथा उरद की धोई इत्यादि बनाकर बेंचने का व्यवसाय ग्रामों में जारी करें तो आर्थिक आय बढ़ सकती है।

उरद, मूँग के पापड़, मुंगौरी, मेथौरी इत्यादि पदार्थ भी देहातों में किसानों द्वारा तैयार किये जाते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से इनका व्यापार सहयोगी-बीज भण्डारों द्वारा करने से आर्थिक लाभ की संभावना है। खेती द्वारा जो धन-धान्य उत्पन्न हो, उसे सहयोगी बीज भंडारों में एकत्रित करके रखना चाहिये। उनके द्वारा जो वस्तुएँ देहातों में बन सकें, उन्हें बनाकर उसका व्यवसाय करना आर्थिक-दृष्टि से उपादेय है। जिन ग्रामों में ऐसे व्यवसायों से लाभ उठाया जा सकता है, उठाना चाहिये अन्यथा खेती की उपज को संचय करके रखना चाहिये। जब इनको बेंचने से लाभ हो, तभी इनको बेंचना चाहिये। सस्ते मूल्य पर बेंचने की अपेक्षा कुछ समय बाद अच्छे दाम पर बेंचना अच्छा है। सहयोगी-बीज-भण्डार के कर्मचारियों को देहातों की तथा नगरों की बाज़ारों का भाव-ताव देखते रहना चाहिये।

बखार

सहयोगी बीज भण्डारों द्वारा खेती की उपज संग्रह करके जो जो व्यवसाय संभव हों उनको तो देहातों में आर्थिक-दृष्टि से करना चाहिये। साथ ही अगली फ़सल में बोने के लिये बीज को भी सुरक्षित करके रखना चाहिये। देहातों में बोने के लिये जहाँ पर अन्न संग्रह किया जाता है, उसे बखार कहते हैं। बखार में बोने के लिये बीज रक्खा जाता है। साथ ही बीज के अतिरिक्त जो अन्न खाने तथा बेंचने के काम में आता है, उसे भी बखार में रखते हैं।

देहातों में बखार अधिकतर वही किसान बनाते हैं। जिनके पास अन्न उनकी आवश्यकता से अधिक पैदा होता है, या जो लोग देहातों में ग़ल्ले का लेन-देन करते हैं। इन्हें अधिकतर लोग देहातों में 'महाजन' कह कर पुकारते हैं।

यह देशी महाजन जिस तरीक़े से ग़ल्ले को बखार में रखते हैं, तथा। उसका लेन-देन बीज की दृष्टि से करते है बखार का वह तरीक़ा बिल्कुल ग़लत तथा हानिकर है। देहात के महाजनों को इसका तनिक भी ध्यान नहीं रहता कि जिस ग़ल्ले को हम किसानों से लेकर इकट्ठा कर रहे हैं; उनमें से किसका अन्न शुद्ध तथा निरोग है, जो बीज की दृष्टि से बखार में रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त किन-किन किसानों का बीज अशुद्ध तथा रोगी है जो बीज की दृष्टि से संग्रह नहीं किया जा सकता। देशी महाजनों की इन असावधानियों का फल किसानों को भुगतना पड़ता है। जिससे किसानों की हानि तो होती ही है, साथ ही आर्थिक-दृष्टि से विचार करने पर देश की भी आर्थिक हानि होती है। देशी महाजनों का किसानों से एकत्रित हुआ अन्न बीज की दृष्टि से कभी भी उपयुक्त हो नहीं सकता। वह अन्न केवल खाने के काम में खौही के तौर पर वितरण किया जा सकता है।

देहातों में जो महाजन अन्न बाँटने का काम करते हैं, वह सावन भादों में बखार से खौही के रूप में अन्न किसानों को सवाई, या ड्योढ़े पर बाँटते हैं। इसके बाद कार-कार्तिक में उसी बखार से बोने के लिये भी किसानों को अन्न देते हैं। किसान लोग अपनी

गरज़ के कारण जैसा बीज पाते हैं उसे ले जाकर के बोते तथा खाते हैं। यदि कोई किसान उक्त दोनों अवसरों पर बीज न लेकर बोने के लिये सरकारी बीज भण्डारों से बीज लाता है तो उसे देशी महाजन खौही नहीं देते। सरकारी बीज भण्डारों में खौही नहीं दी जाती। वह केवल बीज बाँटते है। इसलिये किसान हमेशा देशी महाजनों के चङ्गुल में फँसा रहता है।

जिन ग्रामों में सहयोगी समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं, उन्हें अपना बीज भण्डार स्वयं बनाना चाहिए, जिससे उन्हें शुद्ध तथा निरोग बीज बोने के लिये मिले। यह बीज भण्डार जो ग्रामों में सहयोगी-समितियों द्वारा स्थापित किये जायँ; इसमें ग्रामों के किसानों की सुविधा के लिये कुछ अन्न बखार में खौही देने के लिये बीज के अतिरिक्त संग्रह किया जाय, जिससे उनकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हों।

इस रीति से ग्रामों में सहयोगी बीज-भंडारों को बीज दो-तीन कोठरियों में संग्रह करना पड़ेगा। एक कमरे में तो ख़रीफ़ के बीज की बख़ार अलग बनानी पड़ेगी। दूसरे कमरे में खौही देने के लिये एक बख़ार बनानी पड़ेगी। तीसरे कमरे में रबी के बीजों की बख़ार बनाना होगा। यदि स्थान की कमी हो और कमरे पर्याप्त रूप से लम्बे-चौड़े हों तो ख़रीफ़ का बीज और खौही देने का अन्न एक ही कमरे में भी रक्खा जा सकता है। क्योंकि ख़रीफ़ का बीज आषाढ़ मास में बँट जाता है। लगभग सावन मास में खौही का अन्न भी बँट जाता है। इसलिये जगह की कमी के कारण

इन दोनों प्रकार के अन्न की बखार एक कमरे में बनाई जा सकती है।

रबी की बखार वर्षा-काल में कभी भूल से भी नहीं खुल सकती। इसलिये रबी के बीजों की बखार किसी ऐसे कमरे में बनानी चाहिए, जिसमें वर्षाकाल की वायु का प्रवेश न हो सके।

प्राचीन काल में रबी के बीजों को भूमि के भीतर 'गाड़' खोदकर रखने की प्रथा थी। यह 'गाड़' अधिकतर खुले मैदानों में खोदी जाती थीं। कभी-कभी वर्षा का पानी 'गाड़' में जो भूमि के भीतर खोदी जाती थीं भर जाता था। जिससे गाड़ का सारा अन्न पानी से भीगकर बोने के योग्य नहीं रह जाता था। यह प्रथा अब धीरे-धीरे बन्द हो गई है। बहुत से ग्रामों में 'गाड़' मकान के भीतर छप्पर के नीचे बनाई जाती थी, जिनमें रबी का अन्न भर दिया जाता था, ऐसी गाड़ में अधिकतर पानी से हानि नहीं पहुँचती थी। मकान के भीतर तथा बाहर अन्न संग्रह करने के लिये गाड़ या खत्तियाँ बनाना उसी हालत में ठीक है जब कि यह पक्की हों; कच्ची गाड़ या खत्ती हमेशा खतरे से भरी रहती है। इसमें वर्षा का पानी या सील पहुँचकर अन्न को नष्ट कर सकता है। इसलिये कच्ची गाड़ों या खत्तियों में भूलकर भी बीज नहीं संग्रह करना चाहिये।

बहुत सी जेलों में कैदियों को खाने के लिये जो अन्न-संग्रह किया जाता है, उसे पक्की गाड़ों में संग्रह करने का रवाज़ प्रचलित

है। कृषि-विद्यालय नैनी में भी भूमि के अन्दर कुछ पक्के कमरे बनाये गये हैं। जिसमें अन्न-संग्रह किया जाता है। वह अन्न-बीज की दृष्टि से बोने के भी काम में लाया जाता है। साथ ही जो बोने से बच जाता है उसे खाने के लिये भी बेंच दिया जाता है।

रबी के बीजों को संग्रह करने के लिये भूमि के भीतर पक्के गोदाम बनाये जा सकते हैं, जिसमें सिमेंट और बालू के संयोग से ऐसी जुड़ाई की जा सकती है, जिसमें वर्षाकाल के पानी की नमी नहीं पहुँच सकती। आजकल ग्राम-सुधार की ओर से बहुत से ग्रामों में ग्राम पंचायतों की स्थापना करके पंचायत घर बनवाये गये हैं तथा बनवाए जा रहे हैं। इन पंचायत घरों में बीजों को संग्रह करने का भी प्रबन्ध है। यदि उपयोगी समझा जाय तो कृषि-वैज्ञानिकों की राय लेकर इन पंचायत घरों में भूमि के भीतर रबी के बीजों को संगह करने के लिये आवश्यकतानुसार पक्का गोदाम बनवाने का प्रयत्न करना चाहिये। इन गोदामों में वर्षा काल में वायु का प्रवेश नहीं हो सकता।

बखार में बीज संग्रह करने की रीति

बखार का कमरा चाहे भूमि के ऊपरी भाग में हो चाहे भीतरी भाग में; उसमें अन्न-संग्रह करने के लिये कई बातों पर ध्यान देना पड़ता है। जिन किसानों के ग्रामों में ग्राम-पंचायतें अथवा सह-योगी-समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं, उन ग्रामों के किसानों को अपनी आवश्यकतानुसार अपना अन्न अपने घर में रख छोड़ने

के पश्चात सारा अन्न उक्त-समितियों के अधिकारियों के पास उसी रीति से जमा करना चाहिये, जैसे नगरों में लोग बैङ्कों मे रुपया जमा करते हैं।

सहयोग-विभाग के कर्मचारी अथवा पंचायत घरों के सरपंच किसानों के इस गल्ले का हिसाब-किताब रजिस्टर में रक्खेंगे। जिससे उनके लेन-देन का हिसाब तथा लाभ-हानि का ब्योरा साल्लाना हिसाब पर बना करेगा।

सहयोग-समितियों के कर्मचारियों के पास अथवा ग्राम-पंचायतों के सरपंचों के पास ग्राम के किसानों द्वारा जो अन्न एकत्रित हो, उसका निरीक्षण निम्न-लिखित रीतियों से करते रहना चाहिये।

(१) पहिली बात जिस पर ध्यान देना है, वह यह है कि जो किसान अन्न जमा कर रहा है, उसका वह बीज उन्नति-प्राप्त बीज है, और वह बीज के लिये बीज की दृष्टि से संग्रह किया जा सकता है। यदि उसमें सफाई की जरूरत हो तो अपने सामने साफ करवा कर बीज तौल कर ले लेना चाहिये। किसान के खाते में अथवा जो रजिस्टर इस काम के लिये बना हो, उसमें बीज का हिसाब दर्ज कर लेना चाहिये और किसान को रसीद दे देना चाहिये।

(२) दूसरी बात जो ध्यान पूर्वक देखने की है, वह यह है कि किसान जो बीज जमा कर रहा है वह यदि अशुद्ध, रोगी तथा देशी है तो उसे दूसरी श्रेणी के बीजों में संग्रह कर लेना चाहिये।

ऐसा बीज खाने तथा बेंचने के काम में लाया जा सकता है। इस अन्न को दूसरे कमरे में संग्रह करना चाहिये। इस अन्न का हिसाब-किताब भी सहयोग-समिति अथवा पंचायत घरके रजिस्टर में नियमानुसार दर्ज कर लेना चाहिये।

उक्त रीतियों से जब अन्न वैशाख ज्येष्ठ में रबी की फ़सलों का एकत्रित हो जाय तथा अगहन-पूस-माघ तक में खरीफ़ की फ़सलों का एकत्रित हो जाय, या वर्ष भर में जो कुछ भी उपज जमा होती रहे, उसे एकत्रित करके बखार में रखने के लिये प्रबन्ध करना चाहिये। अधिकतर वैशाख के पश्चात ज्येष्ठ के प्रथम पक्ष में रबी का सारा अन्न संग्रह हो जाता है।

बीज की बखार

रबी के बीजों के लिये जो बखार बनाना हो, उसकी दीवालों को तारकोल से वैशाख के महीने में पोतवा डालना चाहिये। तारकोल से पुते हुये कमरे में दीमक तथा अन्यान्य कीड़ों से कोई हानि नहीं पहुँचेगी। कमरे को पुतवाने के बाद कमरे में नीम की पत्ती एकत्रित करके धुआँ कर देना चाहिये और कमरे को बन्द कर देना चाहिये। इस धुएँ से अन्न को हानि पहुँचाने वाले जीवाणु मर जायँगे। इस रीति से जब बीज के बखार का कमरा शुद्ध हो जाय—तो बखार में बीज रखने का उपाय करना चाहिये।

इस कमरे में भूमि की सतह पर कुसुम का कँटीला भूसा सब से पहिले एक फ़ीट की मोटाई में बिछा देना चाहिये। कुसुम के

भूसे में दीमक तथा चूहे कम हानि पहुँचाते हैं। कुसुम का भूसा यदि कम हो तो गेहूँ का भी भूसा इसमें मिलाकर फ़र्श पर बिछाया जा सकता है। यदि कुसुम का भूसा न मिल सके तो ख़ालिस गेहूँ का भी भूसा इस काम में इस्तेमाल किया जा सकता है। जब फ़र्श पर भूसा बिछ जाय तो नेप्थलीन की कुछ गोलियाँ भी इधर-उधर छोड़ देना चाहिये।

इस भूसे के ऊपर चारों ओर से दीवाल को दो-दो फ़ीट छोड़ कर बोरों में भरे हुये बीज की छल्लियाँ लगाना चाहिये। बोरों में गेहूँ .मटर, चना, ढाई मन प्रति बोरा के हिसाब से भरना चाहिये। जो अन्न हल्के होते हैं, जैसे जव उन्हें २ मन के हिसाब से भरना चाहिये। समान वज़न के बोरे भरकर उनकी छल्लियाँ लगाते जाना चाहिये। इन बोरों में जो बीज के लिये रखे जाँय प्रति बोरा ४—५ नेप्थलीन की गोलियाँ छोड़कर रखने से बीजों में घुनने सड़ने का डर नहीं रहता।

दीवाल के पास जो स्थान लगभग दो फ़ीट तक छुटा हुआ है उसमें भूसा डालते जाना चाहिये। इस रीति से बीज के बखार में जब सब बोरे आ जाँय—तो उसे ऊपर नीचे अगल बगल से भूसे द्वारा भली प्रकार से ढक देना चाहिये। इन बोरों का हिसाब किताब अपने रजिस्टर में दर्ज करना अतीव आवश्यक है। ज्येष्ठ के दशहरा तक बीज के गोदामों को बन्द कर देना चाहिये। इन गोदामों को वर्षाकाल में कभी खोलना नहीं चाहिये।

देशी महाजन या बहुत से किसान बीज के गोदामों में बीज को

एकत्रित करने के लिये बोरों का प्रयोग नहीं करते। वह लोग फ़र्श पर भूसे की लगभग ३-४ फ़ीट ऊँची तह देकर सबसे पहिले जव की तह देकर जव रख देते हैं। उसके बाद फिर भूसे की तह देकर गेहूँ रखते हैं। इसके बाद इसी रीति से चना, मटर इत्यादि रखते हैं। इस रीति से बीज घुनता-सड़ता अधिक है। निकालते समय बीज के मिल जाने का भी भय रहता है। मिला हुआ बीज खाने-पीने में इस्तेमाल किया जा सकता है।

बीज को संग्रह करने के पश्चात उस अन्न को दूसरे कमरे में संग्रह करना चाहिये, जो खाने तथा बेचने के लिये हो। इस अन्न को संग्रह करने की भी वही रीति है, जो बीज के संग्रह करने की है। इसमें केवल अन्तर इतना ही है कि इस बीज या अन्न में नेप्थलीन की गोलियाँ नहीं छोड़ना चाहिये; जो अन्न खाने पीने के लिये संग्रह किया जाय उसके कमरे में 'कारबन बाई सलफाइड' की एक शीशी ख़रीद कर रख दी जाय, इस शीशी का काग सप्ताह में एक बार चौबीस घंटे के लिये खोल दिया जाय। उसके ज़हर से अन्न को हानि पहुँचाने वाले जीवाणु अपने आप मर जायँगे। उक्त औषधि के प्रयोग से बखार में अन्न के घुनने सड़ने की संभावना नहीं रहेगी। उक्त रीतियों से अन्न सभी लोग संग्रह करके लाभ उठा सकते हैं।

खेती का हिसाब किताब

खेती एक प्रकार का व्यवसाय है। जिस प्रकार से अन्यान्य व्यवसायों का हिसाब-किताब रक्खा जाता है, जिससे उस व्यव-

साय द्वारा हानि-लाभ का पता चलता है। उसी प्रकार से खेती का भी हिसाब-किताब रखना आवश्यक है। अन्यथा इस व्यवसाय द्वारा क्या लाभ प्रतिवर्ष हुआ या खेती से क्या हानि हुई, इसका पता कभी नहीं चल सकता। अधिकतर किसान अशिक्षित होते हैं। इस कारण वह हिसाब-किताब नहीं रख सकते। किन्तु आजकल देहातों में शिक्षा का पर्याप्त प्रचार हो चुका है, प्रत्येक किसान के घर में पढ़े-लिखे लोग पाए जाते हैं। इसलिए खेती का आय-व्यय रखना अतीव आवश्यक है।

देहातों में किसानों की अवस्था, उनकी कृषि की उन्नति, तथा पतन की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए जो लोग देहातों में भ्रमण करते रहते हैं, जब वह लोग किसानों से इस बात को पूछते हैं कि गत वर्षों में कृषि-द्वारा प्रति बीघा कितनी उपज हुई या इस वर्ष जो उपज हुई—तो उसका कोई भी विवरण कोई किसान नहीं दे सकता। इससे कुछ भी पता न तो किसान को ही अपनी कृषि के आय-व्यय का रहता है, न उसकी उन्नति करने वालों को ही किसानों की आय-व्यय का पता चलता है। इसलिये इस बात का प्रयत्न करना आवश्यक है कि प्रत्येक किसान अपनी खेती का हिसाब-किताब अवश्य रक्खे।

जब तक खेती करने वाला किसान हिसाब-किताब नहीं रक्खेगा तब तक उसे इस बात का पता ही नहीं चल सकता कि उसकी खेती से इस वर्ष कितनी आय हुई। उस आय में से खर्च निकालने पर उसे लाभ कितना बचा। यदि लाभ नहीं निकला तो

हानि कितनी हुई। इस हानि का क्या कारण है ? जो हानि हुई है किन रीतियों से उपाय करके बचाई जा सकती थी। अगले वर्ष इन हानियों से बचने के लिये क्या-क्या उपाय करना चाहिये।

उक्त बातों की स्वयं जानकारी रखने के लिये अथवा सरकारी तथा ग़ैर सरकारी जो लोग उनकी तथा उनके व्यवसाय की उन्नति के इच्छुक हैं; उनकी जानकारी के लिये प्रत्येक किसान को कृषि-व्यवसाय का हिसाब रखना आवश्यक है, इस हिसाब को रखने के लिये नीचे लिखे रजिस्टर रखना चाहिये।

(१) मज़दूरों का रजिस्टर—प्रत्येक किसान खेती के काम में कुछ न कुछ मजदूर अवश्य रखता है जो किसान स्वय अपना काम करते हैं, खेती के काम के लिये मज़दूर नहीं रखते। उन्हें भी अपने काम की हाज़िरी रजिस्टर में रखना चाहिये तथा अपनी मेहनत का मूल्य वही समझना चाहिये जो कि वही काम यदि वह दूसरे के यहां करते तो उन्हें क्या मज़दूरी मिलती।

देहातों में अधिकतर हलवाह या मज़दूर पैसे पर नहीं रखे जाते, उन्हें अन्न की मज़दूरी कुछ रुपया तथा खेत दिया जाता है। इसलिये इनका रजिस्टर सरकारी फार्मों के रजिस्टर से मिल-जुल नहीं सकता। अतएव हिन्दी मास के अनुसार ज्येष्ठ या आषाढ़ से मज़दूरों का एक रजिस्टर बना लेना चाहिये। यह रजिस्टर पाक्षिक हो सकता है। जिसमें १५ दिन का हिसाब लिखा जा सकता है। आवश्यकतानुसार इसमें प्रति-दिन जितने मज़दूर काम

करें, उनकी तिथि के अनुसार हाज़िरी तथा उन्हें अन्न या पैसा जो दिया जाय उसकी रक़म लिखी जानी चाहिये। सोरहठा तथा लेहना की भी मज़दूरी का अन्दाज़न मूल्य देना चाहिये। अपनी मेहनत तथा घर के सभी प्राणियों की मेहनत का मूल्य लिखना चाहिये। मज़दूरों के हाज़िरी रजिस्टर मे प्रत्येक मास की मज़दूरी का खर्च निकल आवेगा। इससे पता चल जायगा कि साल भर मे मज़दूरी में कितना खर्च हुआ या घर के लोगों ने जो मेहनत की उसका क्या मूल्य हुआ।

(२) फ़सलों की आय का रजिस्टर दूसरा रजिस्टर फ़सलों की उपज का होना चाहिये। इस रजिस्टर में जितनी फ़सलें बोई जायँ, उसके अनुसार सफ़े बना लेना चाहिये। फ़सलों की आय के अनुसार जैसे गन्ना, गेहूँ, जव, आलू, मटर इत्यादि के लिये सालाना एक रजिस्टर होना चाहिये। प्रतिदिन जितना गुड़ बने उसे तारीखवार लिखना चाहिये। एक फ़सल के लिये ६-७ सफ़े हिसाब रखने के लिये पर्याप्त होंगे। एक फ़सल के बाद--दूसरी फ़सल का दूसरी के बाद—तीसरी फ़सल का हिसाब रखना चाहिये।

उक्त रीति से पता चल जायगा कि किस फ़सल से कितनी आय हुई। सारी फ़सल की आय निकालने पर आसानी से इस बात का पता चल जायगा कि साल भर में फ़सलों से इतनी आय हुई।

(३) फ़सलों की काश्त का रजिस्टर -तीसरा रजिस्टर फ़सलों की काश्त का होना चाहिये। इस रजिस्टर में किसान के पास जितने

खेत हों उनके अनुसार नम्बर नियत कर लेना चाहिये। हरेक खेत के लिये सिलसिले वार नम्बर के अलावा दूसरे ख़ाने में पटवारी के ख़सरे का नम्बर भी लिख लेना चाहिये।

आषाढ़ मास से इस रजिस्टर में प्रत्येक खेत में जो काम किया जाय तिथिवार लिखना चाहिये। खेतों की जुताई, बुवाई, खाद, सिंचाई इत्यादि का ख़र्च, लगान, नहर के पानी का मूल्य लगाकर प्रत्येक खेत की पैदावार और खर्च इस रजिस्टर से निकाला जा सकता है।

(४) पशुओं का रजिस्टर--चौथा रजिस्टर पशुओं के सम्बन्ध में किसानों को रखना चाहिये, पशु किस तिथि को ख़रीदा गया या घर में पैदा हुआ, उसके पालन-पोषण का क्या ख़र्च है, उसके परिश्रम का क्या मूल्य है, उसके द्वारा कितनी खाद उसके मूत्र और गोबर से प्राप्त होती है, इन सब बातों का पता पशुओं के रजिस्टर से चलना आवश्यक है, नहीं तो पशु-धन के द्वारा आय-व्यय का पता न चलेगा।

५) कृषि-यन्त्र रजिस्टर—पाँचवाँ रजिस्टर कृषि-यन्त्रों का होना चाहिये। इस रजिस्टर में देशी हल, उन्नति प्राप्त हल, फावड़ा, खुरपी, कुदाल, नार, मोट, सभी का हिसाब-किताब रखना चाहिये। जिससे पता चले कि यह औज़ार कब ख़रीदा गया, इसके ख़रीदने में क्या व्यय पड़ा, कितने दिन यह औज़ार चला, कौन औज़ार खो गया, कौन किससे नष्ट हुआ।

उक्त पाँचों रजिस्टरों में एक साधारण किसान अपनी खेती-

वारी का हिसाब-किताब रख सकता है। जिससे खेती द्वारा आय-व्यय का पता चल सकता है। इन रजिस्टरों के अतिरिक्त जिन लोगों के यहाँ नक़द रूप में रुपये-पैसे का खर्च खेती के काम में होता हो, उन्हें एक वही भी रखना चाहिये, इस वही में जो आय-व्यय नक़द रूप में होता हो, उसे लिखकर माहवार इस बात का संक्षेप में हिसाब बनाकर एक रजिस्टर में उतार लेना चाहिये, जिसे पक्का रजिस्टर या पक्की वही के नाम से कहते हैं। उक्त रजिस्टरों तथा वही में प्रत्येक किसान अपनी खेती का हिसाब रखकर आय-व्यय का अनुमान कर सकता है।

सहयोग समितियों का हिसाब-किताब

किसानों को अपना निजी हिसाब रखने के अतिरिक्त जिन गाँवों में सहयोग-समितियाँ या पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं। वह अपने गाँव भर का हिसाब अपने रजिस्टरों में रखती हैं। सहयोग-विभाग के कर्मचारियों द्वारा ग्राम पंचायतों का हिसाब किताब रखा जाता है, जिसमें किसानों के लेन-देन का हिसाब रहता है।

किसानों को अपने निजी रजिस्टरों में इस लेन-देन को दर्ज रखना चाहिये। सहयोग-समितियों के रजिस्टरों के अनुसार अपने रजिस्टरों में सभी बातें लिखकर उनका मिलान समयानुसार करके अपना हिसाब-किताब ठीक कर लेना चाहिये।

अपने निजी रजिस्टरों के अतिरिक्त जो कर्मचारियों द्वारा

किताबें हिसाब-किताब की मिलें उन्हें हिफ़ाज़त के साथ रखना चाहिये। जिससे उनके हिसाब किताब का पता अपने आप मिलता जाय। जो किसान उन सारे रजिस्टरों को ठीक रीति से न रखेगा उसीके हिसाब में गड़बड़ी हो सकती है और वह हानि उठा सकता है।

बहुत से लोग अधिक क्षेत्रफल में फार्म स्थापित करके खेती करते हैं। उनका व्यवसाय आर्थिक-दृष्टि से किया जाता है। उनके हिसाब ठीक रीति से रखे जाते हैं। उनके हिसाब लिखने के लिये कई प्रकार के रजिस्टर होते हैं। उन फार्मों का हिसाब किताब लिखने के लिये शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो हिसाब-किताब रखने के विषय में वर्तमान शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर चुके हों।

फार्म का हिसाब-किताब रखना फार्म के प्रबन्ध का एक खास विषय है। इसलिये इस पुस्तक में कलेवर बढ़ जाने के कारण उसका वर्णन करना उपयुक्त नहीं है। फार्म का हिसाब किताब फार्म के प्रबन्ध के सम्बन्ध में जो पुस्तक है उसमें भली प्रकार से समझाया जायगा, पाठकों को "फार्म-प्रबन्ध" नामक पुस्तक से इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहिये।

Printed by K. B. Agarwala at the Shanti Press, Allahabad.